"मैं उत्तर प्रदेश सरकार मे उपमंत्री बना, तो शपथ समारोह मे अपनी पूजनीया अम्मा को भी राजभवन ले गया। शपथ ली। पैर छूआशीर्वाद मांगा। बडे स्नेह से उन्होने कहा. मेरा आशीर्वाद भरपूर तुम्हारे साथ है, लेकिन याद रहे अपने बाबूजी के आदर्शों को सामने रखते हुए, ईमानदारी, कर्मठता और पूरी लगन के साथ जो भी काम तुम्हे मिले उसे करना होगा।

जिस समय अम्मा मुझसे यह कह रही थीं मेरी आखों के सामने वह समय गुजरा जब बाबूजी ने प्रधान मंत्री पद की शपथ ली थी। वे घर लौटे थे और अपनी मां यानी मेरी दादी के चरण छुए। इस पर दादी ने इतना कहा. नन्हे मैं चाहती हू भले ही तुम्हे कुछ हो जाय, लेकिन देश को तुम्हारे रहते कुछ नही होना चाहिए, लोगो की सेवा तुम्हें जी-जान से करनी है, बिना अपने जान की परवाह किये।"

"मन का सच एक अनोखी नियामत है, जो केवल इमान के बूते की बात है। वह कोरा नितांत आत्म सच ही होता है जिससे आपको बल मिलता है। इस बल को पाने के लिए जूझना पडता है और उस जुझारू लडाई मे आपके काम आते हैं आपके आदर्श, आपका सकल्प और आपकी शुचिता। और सौभाग्य से ये तीनो मुझे मेरे बाबूजी से मेरी मां से और इंदिरा जी से विरासत मे मिली हैं।

लगभग सभी लोग कहते और मानते हैं कि शास्त्री जी एक अतिशय विनम्र व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे, अत: उनसे 'विनम्रता' उधार लेकर अपने बड़े बेटे का नाम मैंने रखा— विनम्र अब यह इस बेटे का दायित्व होगा कि वह अपने बाबा की विनम्रता की रक्षा करे। शास्त्री जी का व्यक्तित्व वैभवशाली था कहते हुए मैंने अपने बीच के बेटे को आगे किया और जोडा · यह वैभव है। विनम्र और वैभवशाली व्यक्तित्व वाले शास्त्री जी से मिलकर हर कोई विभोर हो उठता है, इसलिए इस छोटे का नाम मैंने रखा विभोर।

लालबहादुर शास्त्री
मेरे बाबूजी

सुनील शास्त्री

""....मैं उत्तर प्रदेश सरकार में उपमंत्री बना, तो शपथ समारोह में अपनी पूजनीया अम्मा को भी राजभवन ले गया। शपथ ली। पैर छू आशीर्वाद मांगा। बड़े स्नेह से उन्होंने कहा, मेरा आशीर्वाद भरपूर तुम्हारे साथ है, लेकिन याद रहे अपने बाबूजी के आदर्शों को सामने रखते हुए, ईमानदारी, कर्मठता और पूरी लगन के साथ जो भी काम तुम्हें मिले उसे करना होगा।

जिस समय अम्मा मुझसे यह कह रही थीं मेरी आंखों के सामने वह समय गुजरा जब बाबूजी ने प्रधान मंत्री पद की शपथ ली थी। वे घर लौटे थे और अपनी मां यानी मेरी दादी के चरण छुए। इस पर दादी ने इतना कहा, मुझे मैं चाहती हूं भले ही तुम्हें कुछ हो जाय, लेकिन देश को तुम्हारे रहते कुछ नहीं होना चाहिए, लोगों की सेवा तुम्हें जी-जान से करनी है, बिना अपने जान की परवाह किये।"

मन का सच एक अनोखी नियामत है, जो केवल इन्सान के बूते की बात है। वह कोरा नितांत आत्म सच ही होता है जिससे आपको बल मिलता है। इस बल को पाने के लिए जूझना पड़ता है और उस जुझारू लड़ाई में आपके काम आते हैं आपके आदर्श, आपका संकल्प और आपकी सुचिता। और सौभाग्य से ये तीनों मुझे मेरे बाबूजी से मेरी मां से और इंदिरा जी से विरासत में मिली हैं।

लगभग सभी लोग कहते और मानते हैं कि शास्त्री जी एक अनिवार्य विनम्र व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे, अतः उनसे 'विनम्रता' उधार लेकर अपने बड़े बेटे का नाम मैंने रखा— विनम्र अब यह इस बेटे का दायित्व होगा कि वह अपने बाबा की विनम्रता की रक्षा करे। शास्त्री जी का व्यक्तित्व वैभवशाली था कहते हुए मैंने अपने बीच के बेटे को आगे किया और जोड़ा यह वैभव है। विनम्र और वैभवशाली व्यक्तित्व वाले शास्त्री जी से मिलकर हर कोई विभोर हो उठता है, इसलिए इस छोटे का नाम मैंने रखा विभोर।

लालबहादुर शास्त्री
मेरे बाबूजी

लालबहादुर शास्त्री
मेरे बाबूजी

सुनील शास्त्री

समर्पित,
भारत के
जवानों
और
किसानों को

आशीष

समय कितनी जल्दी बदलता है। जब बच्चे छोटे थे, हमने कभी आज के दिनों के बारे में नहीं सोचा था, लेकिन उस समय शास्त्री जी के काम को देखकर हम इतना जरूर जानती थी कि एक दिन ये देश में बड़े ओहदे पर होंगे और यही सोचकर हमने अपने हर काम का नियोजन किया, जिसमें कोई कभी भी शास्त्री जी के नाम पर अंगुली न उठा सके। चाहे हम जैसी भी हालत में रहे, हमने इसका ध्यान रखा। यह सीख हमें सासजी से मिली जो देश के काम में उनसे भी दो कदम आगे थी।

आज हमारे बेटे भी राजनीति में हैं और सुनील जब-तब अपनी दिक्कतों और उलझनों के लिए सलाह-मशिवरा करता ही रहता है—हम उसे वही सब बताती हैं जैसे हम शास्त्री जी से बतकही करती रही। उन सब बातों की काफी कुछ झलक आपको सुनील की इस आत्मकथाई किताब में जहां-तहां सजोई दिख जायेंगी—वह सब हमारे घर का सच है जिसे शास्त्री जी ने हम सब, और देश के साथ भोगा है। उस सबको सुन-देखकर आपके मन में जाने कितने सवाल उठेंगे—वह आपके लिए, देश के लिए, भले की बात होगी।

हमें खुशी है कि देश आज भी शास्त्री जी को याद करता है। उनके 'जय जवान जय किसान' की जगह लोगों के मन में है—हमारे लिए तो इतना ही थोड़ा-बहुत कुछ है, आगे हमारा आशीर्वाद है कि सुनील जिस लगन से यह सब कर रहे हैं, अपने बाबूजी की अधूरी बातों को आगे बढ़ाने की ठाने हैं उसमें सुफल होवें।

10 जनपथ, नई दिल्ली
11 जनवरी, 1988
(शास्त्री जी की पुण्य-तिथि)

रक्षा मन्त्री, भारत
MINISTER OF DEFENCE
INDIA

प्रस्तावना

श्री सुनील शास्त्री की यह पुस्तक 'लालबहादुर शास्त्री, मेरे बाबूजी' पाठकों को समर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री को एक प्रतिष्ठित स्वतन्त्रता-सेनानी, कुशल मन्त्री और लोकप्रिय प्रधान मन्त्री के रूप में देश का जन-जन जानता है। लेकिन उनके व्यक्तित्व की गरिमा को, जो मानवीय गुणों पर आधारित थी, पूरी तरह वही जान पाये हैं जिन्हें उनके निकट रहने का सौभाग्य मिला। मैं उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से रहा। इस पुस्तक ने उनका वह वैभवशाली व्यक्तित्व मेरे स्मृति-पटल पर फिर से उभारा है।

श्री लालबहादुर शास्त्री जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में अब तक जितना छप जाना चाहिए था उतना नहीं छपा है। इस दिशा में श्री सुनील शास्त्री का यह एक उल्लेखनीय प्रयास है। यह पुस्तक पाठकों के अतिरिक्त विचारकों और शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होगी। आशा है पाठकों द्वारा इस पुस्तक का स्वागत होगा।

"आज देश के सामने सबसे बड़ा प्रश्न देश की एकता और उसकी दृढ़ता का है। जब भी देश में बड़े संकट आये हैं सारा मुल्क एक चट्टान की तरह मजबूती से खड़ा हुआ है, इसने हमें बल दिया है क्योंकि हम इससे अनुभव करते हैं कि बाहर जो मतभेद और विभिन्नताएं दिखाई पड़ती हैं उसके नीचे हम सबका हृदय एक है और हम सभी एक सुनहरे धागे से बंधे हुए हैं। ...मैं जानता हूं कि मेरा उत्तरदायित्व बहुत बड़ा और गम्भीर है। यह भार मुझे विनम्र रहने के लिए विवश करता है। मैं अपने देश की जनता के प्रति अपना प्रेम तथा आदर प्रकट करता हूं और इतना ही कह सकता हूं कि जितनी मेरी शक्ति है उसे मैं पूरी तरह उसकी सेवा में लगाऊंगा ..."

1 जून 1964

—लालबहादुर शास्त्री

(स्वर्गीय प्रधानमंत्री का देश के नाम संदेश)

मैं स्वयं भी मानता हूं कि हमारी जनता में उत्साह और लगन है और हमारे लोग देश को मजबूत बनाने के लिए बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी करने के लिए हमेशा तैयार हैं। मेरी यह मान्यता कभी-कभी मेरे पैरों तले की जमीन खींच लेती है और मुझे लगता है कि जो भार मुझे मेरे कंधे पर जनता ने दिया है उसे निभाने के लिए मुझे जो माहौल चाहिए, वह नहीं मिल पा रहा। इस माहौल को अपने काम के माकूल बनाने के लिए मुझे कितना सारा समय, कितनी सारी ताकत खर्च करनी पड़ती है—उसमें मन उचाट हो गया है। मेरा यह उचाट मन जो घुटन महसूस करता है—प्रश्न करता हूं कि क्या यह आज की सक्रिय राजनीति की देन है ?

बिना सक्रिय राजनीति के गले में बांधे आज यह अंदाज नहीं लगाया जा सकता कि किस-किस तरह की अजूबी और अनोखी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किस तरह अपने मन की परतों तले अपने आप में हजारों चीजें, हजारों इच्छाओं को दबाकर रखना पड़ता है। इस सबसे जो घुटन मन में उठती है, जो मंथन होता है, तब डर लगता है कि कहीं वह अपने को पलायनवादी न बना दे—फलस्वरूप जूझने के लिए कमर कसनी पड़ती है। उस सबके बावजूद एक जीवंत जीवन जीना लोहे का चना चबाना जैसा है, फिर भी आप उफ नहीं कर सकते और आज की राजनीति में मुंह भी नहीं खोल सकते, कलेजा खोलने, मन बांटने की बात तो बहुत दूर की बात है। परिस्थितियां कभी शेर हो जाती हैं और उत्साह में आप उस पर सवारी कर तो बैठते हैं पर नहीं जानते कि उतरा कैसे जाये ? उस समय याद आती हैं बुजुर्गों की बातें, घर की बीती घटनाएं। इंदिरा जी के साथ बिताये गये क्षण, वे ही सब रास्ता बताते हैं। इमरजेंसी के दौरान इन्दिरा जी को भी महसूस हुआ था कि अचानक एक खूंखार शेर की सवारी उन्होंने कर डाली है और परेशानियां इतनी बढ़ गयी कि उस सवारी से उतरने का रास्ता नहीं दिखता। लेकिन शेर पर चढ़ने वाला शेर से कहीं अधिक अवसरवादी होता है और वह अपने बुद्धि और विश्वास के बल पर सच का सहारा ले सफल होता है। यह उदाहरण बल देता है।

मन का सच एक अनोखी नियामत जो केवल इंसान के बूते की

मिलता है। इस बल को पाने के लिए जूझना पडता है और उस
ह लड़ाई में आपके काम आते है आपके आदर्श, आपका संकल्प
आपकी शुचिता। और सौभाग्य से ये तीनों मुझे बाबूजी से, मेरी
और इन्दिरा जी से विरासत मे मिली हैं। इनके बल पर ही
कितने ही मसले हल किये हैं और हमेशा अपने को साधारण जन-
स के निकट पाया है। मेरी शक्ति ही वह जन-मानस है जिसके
मैं बार-बार जाता हूं और उनका स्नेह, उनका प्यार, उनका
द्र ही मुझे आज तक इस स्थिति मे ले आया है जहा मैं हूं।
लेकिन दुख हुआ—एक इतने बड़े प्रदेश का एक वरिष्ठ मंत्री पद
लते हुए भी मैं वह करने के लिए स्वतन्त्र नही रह गया, जो जन-
स की भलाई के लिए था। वह सारी कल्पनाएं जिसके लिए मैं
पीट कर बनाया गया, वे सारी मर्यादाएं जो मेरे जीवन को
रती-संजोती हैं, उन पर प्रतिबन्ध एक आत्म-चुनौती की तरह
ने आ खडा हुआ। जितने बडे प्रश्न होते हैं उतनी ही बडी जोखम
को उठानी पडती है और वह आप ही हैं कि आप उस जोखम से
ते हैं। कोशिश मेरी भी यही है।

वरी सन् 1987 से, सक्रिय राजनीति में बरसों रहने के बाद,
महसूस होने लगा कि वर्तमान समय मेरी मन स्थिति के बिलकुल
रीत होता जा रहा है। जिस आच और लोहे का मैं बना हूं उसे
करने की, उसे दबाने की, बदलने की कोशिश की जा रही है।
नैतिक हस्तक्षेप, पल-पल पर बाहरी दबाव—सब-कुछ मुझे तोड़ने
सक्रिय साजिश जैसा ही है। मुझे एक ऐसी घुटन की अवस्था में
ा जा रहा है जहां से मेरे सारे राजनैतिक जीवन की ही इतिश्री
जाये। मैंने कभी भी तोड-जोड की प्रकृति का मानस नही चुना।
शा मेरा जीवन रचनात्मकता की ओर ही उत्मुक्त हुआ है। ऐसी
ति के तहत लगभग छह-सात महीने जिस संड़ाध और गिल-
ी राजनीति से परिचित हुआ उससे मुक्ति पाने का एक ही रास्ता
मने आया और वह आया 20 जुलाई, सन् 1987 को।
मैंने अपने मुख्यमंत्री को, जो कि मेरे जीवन के इस क्षणिक नाटक
मुख्य पात्र, सूत्रधार, जो भी आप कहे उनको, अपना इस्तीफा पेश
दिया कि मैं उस सारे का सहभागी नही हो सकता जो मेरी

मानस, मेरी प्रकृति और आत्म-सत्य के खिलाफ है।

यहां तक पहुंचने की कहानी तो आपको आगे चलकर मालूम हो जायेगी, लेकिन यहां अभी केवल इतना ही कि—

> चेक बुक के पन्ने
> पीले हों या लाल
> हर सच्चा इंसान
> बिकाऊ नहीं है!

ये पंक्तियां जाने कब कहां पढ़ी थीं। पर मेरा मन उस कवि के प्रति समर्पित हो उठा। अपनी मां को कैसे समझाऊं, अपने भाई को कैसे अपने मन का अंश पेश करूं, जहां मैंने बाबू जी की दी धरोहर सहेज रखी है। राजनीति से अलग होकर राजनीति में पगे और पले होने के कारण याद आये पिछले कुछ दिन, जो इस तरह से मानस-पटल पर गुजरे क्योंकि अपनी सारी स्वतन्त्रता, सारी छूट और सुविधा के बावजूद आपको स्वीकार करना होगा कि जीवन के कितने ही पल, कितने ही निर्णय आपके वश के नहीं होते। उनमें आपका, आपकी स्थिति का, आपके परिवेश का बहुत बड़ा हाथ होता है जो आपके लिए रास्ता तय करता है।

आपको बताऊं, मेरा नाम सुनील है। वह एक कहानी है जिसे विधाता ने मेरे हाड़-मांस के ऊपर लिख छोड़ी है।

मुझे उस दिन बड़ा ही अचंभा हुआ, जब मैंने अपने लखनऊ के मकान में उस आदमी को देखा, जिसे मैं अक्सर, अपने घर के बाहर फाटक के अंदर आते-जाते अनायास सड़क पर जब-तब देखा करता था।

वह अधिक उम्र का व्यक्ति एक बोटीवाला, आंधी-सर्दी-बरसात में, जाने जब-तब मुझे दिख जाया करता था। वह अपनी एक बहुत ही पुरानी साइकिल पर दूध की भारी-भरकम बाल्टियां लटकाये मेरे घर के सामने से गुजरता और उसे देख मैं सोचता — यह उम्र इसकी इस तरह कठिन जिन्दगी बिताने की तो नहीं है? पर जरूर कोई-न-कोई फांसी का फंदा अभी भी इसके गले में पड़ा है, जो इसे इस तरह की

2 अक्टूबर, बाबूजी का जन्म-दिवस !

इसे गुजरे आठ दिन हुए, आज है विजयदशमी। इस बीच अम्मा से मिलने कितने ही परिचित-अपरिचित आते रहे। तरह-तरह की बातें। घर-परिवार के लोगो के साथ एक मैं भी हूं। लखनऊ से दिल्ली आना अक्सर होता है, पर इस समय का आना एक खास तरह का आना है। बाबूजी की बातों-यादों से सभी का मन भरा हुआ है। परिवार के सभी समय-समय पर उनकी कमी, उनकी अनुपस्थिति अनुभव करते हैं, पर एक मैं हू जो लगभग हर समय बाबू जी को अपने आस-पास जीवन्त पाता हू। लगता है, बराबर वे किसी-न-किसी तरह किसी-न-किसी रूप मे मेरे साथ हर पल उपस्थित हैं।

उनकी उपस्थिति का एक गहरा एहसास लोगों को आज सुबह भी हुआ है। घर पर मिलने आये हैं श्री सी०पी० श्रीवास्तव। समय का गहरा अन्तराल। वे सरकारी अफसर कम, घर के सदस्य अधिक हैं। वैसे वे बाबूजी के प्रधान मन्त्रित्व-काल मे उनके संयुक्त सचिव थे। बातो के बीच जितनी अनजानी बातें उन्होने बाबू जी के बारे मे सुनायीं, आज वे सारी अब के धरातल पर किस्सागोई-सी लगती हैं। फिर भी उनकी बातों ने एक ऐसा माहौल खड़ा कर दिया और लगने लगा कि कुछ ही क्षणों मे बाबू जी हम लोगों के बीच उस तरफ से आ जायेंगे। और श्रीवास्तव जी को सम्बोधित करते हुए कहेंगे . श्रीवास्तव आपसे एक सुझाव लेना है।

वे सी० पी० श्रीवास्तव जी को इसी तरह से सम्बोधित कर बात करते थे।

हम सब लोग पुरानी यादो मे डूबे हुए थे कि हमारा हमारी गोद मे चढ़ने की जबरन कोशिश कर हमारा ध्यान अपनी उपस्थिति की ओर खीचने लगा। मैंने उससे श्रीवास्तव अंकल को नमस्ते करने के लिए कहा और वे पूछने लगे—बेटे, तुम्हारा नाम क्या है?

यह बात हो ही रही थी कि छोटे को देख मेरे दोनों और बेटे वहा आ पहुचे। मैंने तीनों का परिचय कराते बताया—ये हैं विनम्र, इनसे छोटे हैं वैभव, और यह नटखट है विभोर।

श्रीवास्तव साहब सराहना किये बगैर नही रहे। उनकी तरह और

जाने कितने लोग हैं, जो मेरे इन नामों के चयन की मुक्त कण्ठ से
सा किये बगैर नहीं रह पाते, पर आज बातचीत का सिलसिला कुछ
तरह बाबू जी के इर्द-गिर्द चल रहा था कि मुझसे रहा ही नहीं गया
र बरसों की छिपी बात वाली गांठ मेरे न चाहते हुए भी बरबस
ल ही गयी। विनम्र, वैभव और विभोर के नामों को लेकर एक ऐसी
मुक्त चर्चा चल पड़ी जिसमें मेरे बड़े भाई—हरी भैया और अम्मा
भी शामिल थे। वहां उपस्थित सभी के मन में यह प्रश्न उठ खड़ा
आ था कि मैं किस तरह विनम्र, वैभव जैसे नामों की कल्पना तक जा
हुचा हूं।

शायद अम्मा के सामने इस बात को कहने का और कोई दूसरा
उपयुक्त समय नहीं आयेगा। कभी और दूसरे समय यह बात कहनी
पड़ी तो सारी ईमानदारी के बावजूद बहुत छोटा महसूस होगा अपने
आपको!

बाबू जी को लेकर सारा ही माहौल उतना जीवन्त, उतना चार्ज
और एलेक्ट्रिफाइड नहीं होता, तो शायद मेरे होंठों के बाहर यह बात
कभी नहीं आती।

मैंने बताया—मेरे ये बेटे अपने बाबा से अपरिचित ही रहेंगे। उन्हें
मौका ही नहीं मिला अपने बाबा के प्यार को पाने का, क्योंकि मेरी शादी
उनके निधन के बाद हुई। मेरे बाबू जी से परिचय पाने, उन्हें जानने-
समझने की उम्र अभी इनकी नहीं। बाबू जी के न रहने के बाद इस
बात से जूझता रहा कि उनके परिवार की कड़ी को आगे कैसे सहेजकर
रख सकूंगा मैं। जब मेरा पहला बेटा हुआ तो यह प्रश्न और बड़ा
होकर मेरे सामने आ खड़ा हुआ। इस बेटे के मन में यह जिज्ञासा कैसे बोई
जाये कि वह यह कभी जानने-समझने के लिए आतुर हो उठे कि उसके
बाबा कैसे थे? क्या थे? इसलिए बाबू जी के स्वरूप को मन में संवारते
हुए इन नामों की कल्पना गढ़ी कि आगे आने वाले समय में मेरा बेटा
अपने बाबा के आदर्शों के प्रति खिंचाव महसूस कर सके, उस सबको
अपने जीवन में उतारने के लिए प्रेरित हो सके। इसके लिए मुझे सहारे
के लिए मिले बाबू जी के गुण!

लगभग सभी लोग कहते और मानते हैं कि शास्त्री जी एक अतिशय
विनम्र व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे, अतः उनसे विनम्रता उधार लेकर
अपने बड़े बेटे का नाम मैंने रखा विनम्र। अब यह इस बेटे का दायित्व

होगा कि वह अपने बाबा की विनम्रता की रक्षा करे, कहते हुए मैंने अपने बड़े बेटे को सामने किया। जिसने पूरी विनम्रता से श्रीवास्तव अंकल को नमस्ते की और उन्होंने प्रति-उत्तर में उसके सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दिया।

शास्त्री जी का व्यक्तित्व वैभवशाली था, कहते हुए मैंने अपने बीच के बेटे को आगे किया और जोड़ा, यह है वैभव! उसने भी मेरे कहने पर नमस्ते की और श्रीवास्तव अंकल ने बड़े प्यार से उसके गाल थप-थपाये।

विनम्र और वैभवशाली व्यक्तित्व वाले शास्त्री जी से मिलकर हर कोई विभोर हो उठा है, इसलिए इस छोटे का नाम मैंने रखा विभोर!

उसने बिना मेरे कहे अंकल को नमस्ते की और जबरन श्रीवास्तव जी ने उसे प्यार से अपनी गोद में खींच लिया। तभी मैंने देखा, हरी भैया की आंखों की चमक दूनी हो उठी है और वे कह रहे हैं, मुझे नहीं मालूम था कि तुमने इस गहराई से सोचकर रख छोड़े हैं ये नाम! कहते उन्होंने तीनों को अपनी बाहों के घेरे में ले लेना चाहा और आगे कहते गये—बड़े सुन्दर हैं ये नाम और उससे कहीं अधिक सुन्दर हैं इनके पीछे की बातें जिस पर किताब लिखी जा सकती है!

हरी भैया अभी अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि मैंने पाया पास बैठी अम्मा विनम्र, वैभव और विभोर—तीनों को अपनी गोद में खींच चुकी थी। उनकी आंखें नम हो आयी थी। उनके अधरों पर स्वर्गिक मुस्कराहट थी, जिसमें से प्यार की गंगा भरपूर फूट पड़ी थी और मेरी बात पर जितना प्यार दादी के इन लाडलों ने उस क्षण अर्जित किया यह उनके लिए जीवन की अनोखी धरोहर बन चुका है, उनकी सुकुमार आंखों को देख मुझे ऐसा कुछ एहसास हुआ।

मेरे बच्चे, 15 अगस्त और दिल्ली का लाल किला

आज बेटे की इन आंखों ने मुझे जबरन अपने मन को टटोलने पर मजबूर कर दिया और मुझे अपने बचपन में देखी गयी ऐसी ही कई आंखों की याद आ गयी जो मुझे अक्सर सालती, मेरे अपने अकेलेपन को छूती तंग करती हैं, जैसे नेहरूजी की आंखें। वे आंखें भी मेरे जीवन की अनमोल धरोहर हैं।

15 अगस्त की है।

मैं लखनऊ से दिल्ली आने वाला था। इस बार मेरे बेटों ने जि
की वे भी मेरे साथ 15 अगस्त को दिल्ली आ, पास से प्रधान मन्त्री क
देखना चाहेंगे। उनका बाल-हठ किसी भी तरह टाला नहीं जा सका
उस दिन परिवार के साथ मैं पहुंचा लाल किले। वहां बच्चों के
बैठने के लिए अलग व्यवस्था थी। वैसे मेरे बचपन में जब मैं अपने
बाबूजी के साथ लाल किले आता था, 15 अगस्त को, तब की और
आज की बात में कितना फर्क आ गया है सुरक्षा की दृष्टि से। आज
बच्चे समारोह के बीच कुछ पूछना-गिनना चाहें तो वह सम्भव नहीं।
अलग पत्नी के साथ बैठा दिया गया मैं। कार्यक्रम समाप्त हुआ, हम
वापस चल पड़े। इतनी देर में जाने कितनी बातें, पुरानी कितनी घटनायें
मेरे मन में इकट्ठा हो आई थी। सीढ़ियों से उतरते हुए सहज ही मैंने
अपनी पत्नी का हाथ धीरे से पकड़ा और कहने पर मजबूर हो उठा,
क्योंकि हो रहे समारोह के बीच मुझे पंडित नेहरू की आखें बार-बार
सालती रहीं। शायद बच्चों की दूरी ने उन आंखों को और कहीं
अधिक पैना कर दिया था। मुझे सहारा चाहिए था। पत्नी को अटपटा
न लगे, उसका हाथ छूते ही मैंने कहा— मीरा, इसी जगह लाल किले
पर एक बार पंडित जी का हाथ पकड़ने और उनके गले लगने का मौका
मैंने भी पाया था।

मेरी बात पर पत्नी ने मेरी ओर ठिठककर देखा। उसकी आंखों
ने जानना चाहा पूरी तरह बताओ न, कहो—कब? कैसे?

मैंने कहा—यह बात मैं लखनऊ में उसी दिन कहना चाहा
था, जब बच्चों ने लाल किले पर आने की बात कही थी। ऐसे ही मैंने
भी अपने बाबू जी से लाल किले पर आने की जिद्द की थी, पर काम
की आपाधापी में यह सब, यहां लखनऊ में, कह नहीं पाया। यहां बैठे-
बैठे मुझे नेहरू जी की आंखों की वह चमक लगातार सालती रही।
जानती हो, बाबू जी के साथ यहां लाल किले पर पहली बार पहुंचकर
मैं लगातार एकटक पंडित जी को ही देखता रहा। उनके एक-एक
लफ्ज और हावभाव मेरे मन पर आज भी सजीव ताजे अंकित हैं। वैसे
वे घर भी आते थे। मीटिंग होती थी और मैं हमेशा छिपकर उनकी
बातें सुना करता था, पर 15 अगस्त की बात ही कुछ और थी, जब मैं
पहली बार यहां आया था और मुझे लगा पंडित जी आये, ध्वजारोहण
हुआ। उन्होंने बोलना शुरू किया और जितनी जल्दी उनका सारा

भाषण खत्म हो गया। वह सारा समय मेरे लिए कितना छोटा हो उठा था—बस, एक पल का जो पलक छपकते ही मानो बीत गया। भाषण के बीच एक और लालसा जागी . उनका हाथ पकडकर चलने की। बार-बार उनके पास जाता और वे प्यार से मुझे थपथपा देते।

जैसी मेरी इच्छा थी, उनका हाथ पकडकर चलने की वह नही हो पायी। उस समय के रक्षा मत्री कृष्ण मेनन भी पडित जी के साथ चल रहे थे। उन्होंने देखा—मैं बार-बार पडित जी के निकट प्यार पा लौट जाता हू। मेरी नटखटता शायद उन्हे न पसद आयी हो या कुछ और कि अगली बार जब मैं पडित जी की तरफ बढ़ा तो उन्होने अपने एक हाथ से मेरा हाथ पकड़ा और दूसरे से बड़े प्यार से मेरी नाक। उन्हे शायद यह पता नही चल रहा होगा कि मुझे कितनी तकलीफ हो रही है। मैं इस तरह महसूस कर रहा था जैसे पिजड़े मे बद एक पक्षी महसूस करता हो। मैंने पडित जी के निकट आ उनके हाथ को धीरे-से हिलाया। पंडित जी ने मेरी ओर देखा और वे भाप गये कि बडी कष्ट-दायक स्थिति मे है यह बेटा। उन्होंने सीधे तरीके से मेनन साहब से यह नही कहा कि वे मेरी नाक छोड दें, इससे लड़के को तकलीफ हो रही होगी, पर बड़े सुन्दर तरीके से हसते हुए बोले—क्यो, भाई कृष्ण मेनन जी, आप चाहते हैं कि इस लड़के की नाक भी आपकी तरह लबी हो जाये ?

इतना सुनना था कि कृष्ण मेनन ने तत्काल अपना हाथ मेरे नाक की पकड़ से हटा दिया। मुक्त हो मैं खुशी-खुशी पडित जी की तरफ लपका। पडित जी ने बड़े प्यार से मुझे गोद मे भर, गले से लगा लिया। इसी तरह अपनी गोद मे मुझे उठाये वे चलते रहे, फिर मेरे बाबू जी ने मुझे उनकी गोद से उतार लिया। आज जब सोचता हू तो बात कितनी अजीब लगती है। होने वाली बात के अर्थ हम चाहे न जाने, लेकिन वह बिना मतलब नही होती। अगर मेनन साहब ने मेरी नाक न पकड़ी होती, तो शायद नेहरू जी की निकटता, इतना प्यार पाने का वह सौभाग्य मुझे न मिलता।

जब यह सब मैं मीरा को सुना रहा था तो मुझे याद आया कि राजनीति में पड़े-उलझे लोगों के लिए परिवार कैसे बंट जाता है। काम की आपाधापी के बीच पिता-पुत्र के सम्बन्धो की खाई कैसे बढ जाती है। वैसे मेरे बाबू जी ने कभी यह दूरी नही महसूस होने दी,

फिर भी राजनीति राजनीति है। सारी कोशिश के बावजूद हमारे पिता-पुत्र के सम्बन्धों में कमी आना लाजमी था। वह कमी कभी-कभी मुझे कचोटती रहती।

बाबूजी के साथ रंगून

बात है दिसम्बर 1965 की।

याद आता है किस कठिनाई से मौका मिला था हम लोगों को रंगून जाने का, वह भी मेरी पहली विदेश-यात्रा ! मैं और मेरा छोटा भाई अशोक, बाबूजी के साथ रंगून जा रहे थे। बड़ा अच्छा लग रहा था अम्मा-बाबूजी के साथ यात्रा करना। बार-बार मन में यही सोचता कि वहां पहुंचने पर एक प्रधानमंत्री के पुत्र होने के नाते मुझे क्या करना चाहिए ? क्या उचित होगा ? क्या नहीं ? और कुछ थोड़ी-सी घबराहट भी मेरे मन में थी। मैंने बाबूजी से जानना चाहा : हम लोगों को क्या कुछ करना पड़ेगा वहां ?

उनका उत्तर था—सुनील, ये सारी बातें तुम लोगों को बता दी जायेंगी। कोई ऐसी बात नहीं जिसे लेकर तुम ज्यादा परेशान हो। यह जरूर है कि वहां पहुंचने पर तुम्हें वहां के बच्चों से, स्कूल के लड़कों से शायद मिलना भी पड़े। मीटिंगें आयोजित की जायेंगी और उसमें तुम अपने देश के बारे में बताना।

देश के बारे में ! मैंने तो आज से पहले कभी इस प्रश्न पर सोचा ही नहीं, इसलिए पूछ बैठा—देश के बारे में हमें क्या बताना चाहिए ? वे कुछ और कहने वाले थे कि सहसा मैंने पाया, वे मुंह खोलते-खोलते रुक गये, वे आंखें आज भी मेरे मन-पटल पर सजीव अंकित हैं। एक पल देखते रहने के बाद बोले—सुनील, तुमने जो प्रश्न किया है, शायद, उसका उत्तर किसी के पास कठिनाई से ही मिलेगा। देश के बारे में क्या-क्या बतायें ! अपना देश इतना विशाल है और इतनी विविधता है कि इसकी हर बात, हर व्यक्ति शायद ही जानता हो, पर तुम्हें यह बात जरूर ध्यान में रखनी चाहिए कि हमारी संस्कृति और जो हमारी परंपरा है, जो एक हमारा खास दृष्टिकोण है विभिन्न धर्मों के प्रति, उन सारी बातों को वहां स्पष्ट करना चाहिए, बताना चाहिए और साथ-ही-साथ अपने देश के महान नेताओं के बारे में, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के बारे में, पंडित जी के बारे में बातें करनी चाहिए।

हम लोग रगून पहुंचे। हमें तौर-तरीकों से अवगत कराया गया। प्रधानमत्री उतरे, गार्ड ऑफ आनर हुआ। हम लोग गेस्ट हाउस में पहुचा दिये गये। वहा ठहरने के लिए हम दोनो भाइयो को अलग-अलग कमरा दिया गया। जीवन मे इस तरह अलग रहना पहली बार हो रहा था, परेशानी की बात थी।

अपनी परेशानी ले, हम बाबूजी के पास आये। वे बोले—अभी अलग कमरों में ही रहिए। रात आने पर एक ही कमरे में सो जाइएगा।

इस यात्रा ने मन में जाने कितने प्रश्न खड़े कर दिये!

विदेश से देश की ओर लौटते हुए मन मे देश के नगरों, महानगरों की ओर जाने, उन्हें देखने-सुनने की जिज्ञासा जागी। भारत लौटने पर बाबूजी के सामने अपने मन की बात रखी, कहा—रंगून के अनुभव अपनों को सुनाने चाहिए। हमारे कुछ दोस्त लोग बम्बई का प्रोग्राम बना रहे हैं, अगर आप इजाजत दें तो मैं भी उनके साथ बम्बई घूम आऊं।

मेरी बात सुन बाबूजी बोले—देखो, सुनील विदेश-यात्रा करके आये हो! तुम्हारी छुट्टियां आ रही हैं, मैं चाहता हू कि तुम ग्रामीण अचल का दौरा करो। उन लोगों को जानने की कोशिश करो, जिनकी सेवा तुम्हे करनी है, उनकी कठिनाइया क्या हैं? वे किस तरह रह रहे हैं? यह सब जानो-समझो।

उस समय उनके इस उत्तर पर मेरा किशोर मन परेशान हो उठा, क्या जानता था उनके ये चंद वाक्य, मेरे जीवन की राह गढ रहे हैं। वे मेरे सामने जो मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं, वह आगे जा मेरा इष्ट बन जाने वाला है। उनसे जवाब-सवाल का प्रश्न ही नही उठता था, पर मन कोस रहा था। किसी तरह भुनभुना कर मन की बात उनके सामने रख दी—गावो मे जाने से सारी छुट्टी खराब हो जायेगी बम्बई न गये तो सब बेकार हो जायेगा और आप जा रहे हैं ताशकंद!

मेरे स्वरों का उलाहना उनसे छिपा नही था। बोले—अच्छा, आप ऐसा कीजिए, जब मैं ताशकद से लौटकर आऊं तब आप मुझे बताइएगा। हम बम्बई घूमने का इंतजाम करवा देंगे, पर अभी आप मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्र का दौरा करें, वहा गांवो में जायें उन्हे

देखें-समझें।

उनका स्नेह भरा आदेश टालना असम्भव था, उसे मैं कैसे टालता!

बाबूजी उधर ताशकंद गये और मैं भोपाल, मध्य प्रदेश के लिए रवाना हो गया। जाते समय मैंने बाबूजी से जरूर पूछा कि मैं दौरा तो कर आऊंगा पर इससे आप मुझसे चाहते क्या हैं? कुछ वहां के लिए काम तो बताइए, जिससे मैं लौटकर आप से बता तो सकूं कि यह-यह किया और मुझे उसमें कितनी सफलता मिली।

बाबूजी ने कहा—सुनील, इस दौरे में राष्ट्रीय सुरक्षा कोष, जो नेशनल डिफेंस फंड है, उसके लिए कुछ धनराशि इकट्ठी करनी होगी। लड़ाई हो चुकी है। वे समझौते के लिए जा रहे थे। उनका कहना था कि देश के नौजवानों के लिए और रक्षा के लिए धन की जरूरत है। उसके लिए मैं भी कुछ करूं। उन्होंने आगे हिदायत दी कि जहां-जहां मैं जाऊं, लोगों के मन में जागृति पैदा करने की कोशिश करूं। इस तरह मेरा दौरा भी होगा और मैं देश के कुछ काम भी आ सकूंगा। इसके लिए मुझे कोशिश करनी चाहिए।

मैंने पूछा—आप इसके लिए मुझसे कितना चाहते हैं? कुछ धन-राशि निश्चित कर दीजिए।

उनका उत्तर था—दस हजार रुपये भी आप करेंगे तो हम आपकी काफी तारीफ करेंगे।

मैंने जवाब दिया—मैं दस नहीं, आप के लिए तीस एक हजार तो ले ही आऊंगा।

मेरे इतना कहने पर मैंने पाया, वे धीर-गम्भीर हो सराहना के साथ मुझे देख रहे हैं। आज याद कर आज भी मैं उन आंखों की गर्मी से तिलमिला उठता हूं। क्या कुछ नहीं कहा था उन अनबोली आंखों ने मुझसे!

उधर बाबूजी ताशकन्द गये और मैं मध्य प्रदेश के लिए चल पड़ा।

दौरे का नया अनुभव मन में बनने लगा था। एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव, एक मीटिंग से दूसरी मीटिंग। आज अगर कोई मेरी आंखों में झांकने का [illegible] कर दे, तो शायद [illegible] ही उस दौरे की सारी तस्वीर दिल के पर्दे पर [illegible] चली आयेगी।

कैसी रोमांचक यात्रा की शुरुआत!

भोपाल में चंदा-फेरी और बाबूजी का निधन

पहले सारा कुछ एक अनावश्यक घटनाक्रम लग रहा था। फिर जो उत्साह भीड़ की आंखों में उमडता पाया उससे साहस बढ़ने लगा। मीटिंगों का क्रम बढ़ता जा रहा था। अब भूख ने साथ छोड दिया था। लोगों से मिलता, उनकी बातें, उनका दुखदर्द सुनता और उसे बांटने की चेष्टा में यह आभास जागा और लगा, जीवन का सत्य स्पष्ट हो रहा है। मेरा लक्ष्य संवरने और मूर्तरूप प्राप्त करने लगा है। इससे पूर्व ग्राम-जीवन या ग्रामीण अंचल से कोई सम्पर्क या लगाव ही नही पनपा था। आज सोचता हू, सोलह वर्ष की आयु में इतने निकट से भारत देखने का अवसर बाबूजी ने सामने रख दिया था।

हर रात, बाबूजी को, सोने से पहले याद करता, सोचता था। उन्होने जो मार्ग दिखा दिया है वह अब मेरे जीवन को अपने मे पूरी तरह समेट ले! योजना बनाता, लौटकर अपने अनुभव, अपनी इच्छा और कल्पनाओं को किस-किस तरह बाबूजी के साथ बांटकर जिऊंगा। हर दिन यह इच्छा बढती बलवती होती चली जा रही थी। बाबूजी से मिलने की आतुरता।

दो-तीन दिनों के अंदर दस-पंद्रह हजार से ऊपर रुपये इकट्ठे हो चुके थे। इसके साथ ही कितनी ही जगह महिलाओं ने देश के जवानों के लिए अपने गहने-जेवरात तक दे दिये। वह सारा कुछ जिला प्रशासन एकत्र करता जा रहा था।

दस तारीख की रात!

विदिशा का एक गाव गज बसोदा।

यहां मीटिंग मे पहुंचना था साढ़े सात बजे, पर उसके पहले के कार्यक्रम लंबे होते चले गये। हम बसोदा पहुचे साढे ग्यारह, पौने बारह बजे। वे लोग मेरा इतजार नही कर रहे थे, बल्कि मेरे बाबूजी का। युद्ध-विजयी नेता के रूप में, जिसने देश को विजय दिलाई थी, उसे उन्होने सत्कार ही नही दिया, बल्कि अपने हृदय के सिंहासन पर विराजित कर लिया था। उस भीड मे मैंने सबका मान-सत्कार अपने बाबूजी के लिए स्वीकार किया। मुझे लगा कि वे चाहते हैं कि मैं उनकी भावनाओं को दिल्ली ले जाकर बाबूजी तक पहुंचाऊं।

मीटिंग समापन के नजदीक आयी तो उस रात जिला अधिकारी

ने बताया कि ढाई लाख रुपये इकट्ठे हो चुके हैं। उस पल में आते मन के उत्साह की आप को क्या बताऊं।

कहां बाबूजी की माग के दस हजार और मेरे वादे के तीस हजार, और जनता के दिये अब तक के तीन लाख से ऊपर! आप एक सोलह साल के युवक के मन की खुशी का अंदाज लगाइये! क्या मच रहा था उस क्षण मेरे मन के आंगन में, जैसे पर लगाकर मैं बाबूजी के सामने जा खडा होना चाहता था।

काफी रात गये इन्स्पेक्शन-बंगले पर वापस लौटा। अभी दो करवटें भी नही ली थी कि कच्ची नीद मे साढे चार बजे के लगभग मुझे जगाया गया। कहा गया—आगे का कार्यक्रम रद्द कर दिया गया है मुझे सीधे भोपाल जाना है।

उस समय मेरे साथ श्री शंकर दयाल जी शर्मा, जो आज भारत सरकार के उप-राष्ट्रपति हैं, थे। मैं उनके कमरे मे गया, उ आंखें गीली थी। उन्होने या कि और किसी ने कुछ नही कहा मुझे अजीब लगा, सभी आंखे चुरा रहे हैं।

मेरे साथ वहा के राज्यपाल के० सी० रेड्डी के पुत्र सुदर्शन रे थे। जब मैं भोपाल से चला था उस समय राज्यपाल जी की त कुछ खराब थी। मेरे मन ने कहा सुदर्शन रेड्डी को नही चाहते, कही उनके पिताजी नही रहे हों, यह सोच मैंने कुछ खोजबीन नही की।

भोपाल पहुचने मैंने वहा की सरकारी इमारतो पर स झडे को देखने की अथक चेष्टा की कि वह क्या आधा झुका हमारी गाडी फर्राटे से चल रही थी। वह बात भी सम्भ. पायी।

राजभवन पहुचा। गवंनर साहब से मिलने की इच्छा जाहिर पर इसके लिए भी असमर्थता दिखाई गयी। उनकी तबीयत खरा और उनके लिए मेरा सामना करना कठिन था। उनकी पत्नी मेरे आयीं और उन्होने कहा—आपको दिल्ली जाना होगा, क्योंकि अ दादी नहीं रहीं। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री डी० पी० मिश्र जा रहे हैं, वे अपने हवाई जहाज से तुम्हें वहा से जायेंगे।

नही दिया गया मुझे !

्वाई अड्डे पर पहुचे।
ादी मुझे मुख्य मन्त्री के साथ ले जाया जा रहा था।
ा अखबार पर नजर पड़ी और केवल इतना ही पढ पाया
ारो में शास्त्री लिखा है। सोचा कि वह ताशकद की खबरों
है। इससे आगे सोचने की अक्ल ही नही पैदा हुई थी तब
र के आस-पास पालम हवाई अड्डे पर उतरा। हजारो
ले थोडा-सा चौकन्ना हुआ। लगा शायद गलत बात मेरे
ा दिलाने के लिए कही गयी है मुझसे। दादी की नही,
की मृत्यु न हुई हो ! बाबूजी की तरफ तो ध्यान नही गया।
ायद इसलिए उमड़ आयी है कि वे सब बाबूजी को मान
वेदना देने आये हैं।

की ओर !
ाभी को रोते पाया। हरी भैया, अनिल, अशोक—सभी दुखी
थे, कोई नही बोला। मैं ठिठककर पल भर खडा रहा। एक
ाज आयी—चलो अम्मा के पास !
लि बरामदे में ले जाया जा रहा था मुझे। मैं अपने से लड

धागा छीन लिया गया था और मैंने उन वंदनवारों के सुमन पुष्प को मन की मुट्ठी में भींचकर कस लिया था। इन सारी बातों, घटनाओं को जिनको मैं बाबूजी के साथ बांटकर जीना चाहता था, उन्हें आजीवन कभी भी अब बांटकर नहीं जी सकूंगा। कैसी छटपटाहट और असहायवाली स्थिति में मैं लाकर खड़ा कर दिया गया था! नये कच्चे मन के अनुभव मेरे मन की गहराइयों में अब सदा-सर्वदा के लिए बन्द रह जायेंगे। मैं दौड़ा था उन सब को साथ ले बाबूजी से कहने सुनने पर बाबूजी के साथ उन सबको लिये जाने से पूर्व ही वे मेरे सामने चुप, सदा के लिए नींद के आगोश में पड़े थे। उस क्षण मेरी कसी मुट्ठी मेरी छाती से आ लगी और मेरे मन ने एक प्रण एक अनुष्ठान किया।

मैं अम्मा के गले से लगा बड़ी हिम्मत करके उनकी आंखों की ओर देख पाया, जहां गहरा सूनापन था। उनकी आंखों से लगातार आंसू की धारा फूट रही थी। मैंने हाथ बढ़ा अपनी हथेली से उनकी आंख पोंछने और उनका दुख बटाने की असफल कोशिश की। उन आंखों की अनोखी गहरी छाप मेरे मन में घर कर गयी।

मैंने उस पल, इस बात का फैसला किया कि कोशिश करूंगा आजीवन, आने वाले समय में, बाबूजी की उस भावना का आदर करते हुए, भारत को सही रूप में जान सकूं। उन्होंने मुझे गांव में जाने की सलाह दी थी कि वहां जा सेवा का प्रन लू, बाबूजी ने मुझे इसके लिए ही, इस सबके लिए प्रेरित किया था। मेरी कोशिश और चेष्टा यही रहेगी कि जब तक सम्भव हो सकेगा, जैसे भी सम्भव हो सकेगा बाबूजी की उस भावना को अपने साथ लेकर ही आगे बढ़ूंगा।

बाबू जी जो कुछ चाह रहे थे वह भोपाल जा, करने की कोशिश मैंने की, पर उसमें पायी अपनी सफलता उनको बता नहीं सका। इसलिए उनका सौंपा हुआ काम आजीवन करता रहूंगा—यह मैंने प्रण किया, क्योंकि अपनी बातें उनसे न बता पाने की असफलता मुझे जीवन भर सालती रहेगी।

लखनऊ ! मन् · !

मैं उत्तर प्रदेश सरकार में उप मन्त्री बना तो शपथ समारोह में अपनी पूजनीया अम्मा को भी राजभवन ले गया। शपथ लेने के बाद अम्मा के पैर छू आशी[illegible]

सामने रखते हुए कहा—ईमानदारी, कर्मठता और पूरी लगन के साथ जो भी काम तुम्हे मिले उसे करना होगा।

जिस समय अम्मा मुझसे यह कह रही थी, मेरी आखो के सामने वह समय गुजरा जब बाबूजी ने प्रधानमन्त्री पद की शपथ ली थी। मैंने सुन रखा था: बाबूजी घर लौटे थे और अपनी मा यानी मेरी दादी के चरण छुए। इस पर दादी ने इतना कहा—नन्हें, मैं चाहती हू भले ही तुम्हे कुछ हो जाये, लेकिन देश को तुम्हारे रहते कुछ नही होना चाहिए, लोगो की सेवा तुम्हें जी-जान से करनी है, बिना अपने जान की परवाह किये।

उस पल ये सारी बातें मेरे मन मे गूंज उठी थी। पर उस दिन भी जब अम्मा आशीर्वाद से मेरे सिर पर अपना हाथ फेर रही थी तब भी उनकी आखो मे वही सूनापन था, जो भोपाल से लौट मैंने अम्मा की आखो मे पाया था।

उन हाथों की कीमत !

फिर कई बार अम्मा लखनऊ आती रही।

समय का अन्तराल !

एक बार वे लखनऊ मे मेरे साथ थी। मेरे मन मे उनके प्रति अनुराग जागा और जाने क्यो अनायास ही मैंने उनसे माग की—अम्मा, आपकी बहू के हाथ का खाना तो मैं हर दिन खाता ही रहता हू, आप के हाथो बना खाना खाये काफी अरसा हो गया। आप जानती हैं मेरी पसन्द। आज शाम आप के हाथो बना खाना खाना चाहता हू।

उम्र उनकी काफी हो चुकी है। यह माग अटपटी लग सकती है। पर मेरा भोला मन इस मांग से कतराया नही, जाने क्यो ऐसा ही जी में आया और मैं कह गया।

उस शाम उन्होंने खाना बनाया। मेरे बेटे भी तारीफ करते रहे—दादी मा, आज आपने सचमुच बहुत ही अच्छा खाना खिलाया !

खाना खा, जब मैं हाथ धोकर लौटा, तो मैंने अम्मा के दोनों हाथों को बहुत प्यार किया और मेरे मुह से अनायास निकला: अगर मुझसे आज कोई पूछे, इन हाथों की कीमत क्या है, तो मैं अरबों-अरबो में जाने कितना कह दूगा। क्या इस प्यार, इस स्नेह की कीमत लगायी जा सकती है?

इतना कह, मैंने खुशी देखने के लिए अम्मा की आंखों में झांका। वहां वह खुशी नदारत मिली। बुझती-जलती आंखें देखी हैं वही तो मैंने पाया है उसे अम्मा की आंखों में! खाना खिलाकर जो संतोष उनकी आंखों में झलका था, वह मेरे बोलते ही एकदम नदारत था। उनसे दो बूंद आंसू छलक आये थे, जिसे वे साड़ी के छोर से सुखाने का झूठा प्रयास कर रही थीं।

क्या हो गया? क्या मैंने कुछ गलत बात कही? अपनी गलती जानने के लिए उनके बगल में जा बैठा। मेरे खोद-खोदकर पूछने पर उन्होंने ब-मुश्किल इतना ही कहा—कुछ नहीं!

फिर भी मैं उनके मन की गहराई को भाप चुका था। मैंने उन्हें टालने नहीं दिया और बार-बार कुरेदकर पूछता रहा—अम्मा, बताइए न, क्या बात है!

काफी कठिनाई के बाद ब-मुश्किल उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा—कुछ नहीं, मुझे याद आ गयी थी तुम्हारे बाबूजी की!

मैंने आगे जानना चाहा, वे बोलीं—एक बार तुम्हारे बाबू जी काफी दिनों बाद जेल से लौटे थे और जो कुछ घर में था, मैंने जोड़ बटोरकर खाना बनाया। वह उन्हें बहुत पसन्द आया और उन्होंने ऐसी ही बात कही थी कि कोई मुझसे पूछे कि तुम्हारे इन हाथों की कीमत क्या है तो मैं कहूंगा अरबों-अरबों-अरबों…!

अम्मा की इस बात पर मैं अपने को रोक न सका और मैंने उन्हें बरबस बांहों में भर गले से लगा लिया।

आज भी अम्मा की वे सजीली आंखें जब-तब याद आ जाती हैं। जब भी कभी रात में नींद टूट जाती है और परेशान होता हूं तो ताशकंद जाने से पहले कही गयी बाबूजी की बातों और उनकी आंखों की गहराई कि तुम अगर देश के लिए तीस हजार कर लोगे तो हम तुम्हारी काफी तारीफ करेंगे और मैं उनके दिये गये वादे के तीस हजार इकट्ठा करने में अपना सारा जीवन खर्च करता रहूं, तभी अपने को सफल मानूंगा!

एक और अभिवादन

गणतन्त्र दिवस। आज बार-बार दूरदर्शन पर तिरंगे झण्डे को देख एक भावना उठी, गर्व का अनुभव कर रहा था मैं भारतीय नागरिक

होने का ! बार-बार मन करता था कि तिरंगे को सैल्यूट करता रहूं पर साथ ही मन में कहीं तूफान भी रह-रहकर उमड़ रहा था। वह तूफान जो कि आतंकवाद के समाचारों से, तोड़-फोड़ की घटनाओं से पूरी तरह बोझिल है ! जहां एक ओर तिरंगे को ऊंचा लहराता देख रहा था, उसमें से देश की ऊंचाई झांक रही थी, दिखाई पड़ रही थी, वहीं दूसरी ओर देश के ऊपर कितना बड़ा संकट है, इसका अहसास मन को विचलित कर रहा था।

संकट के बादल मंडरा रहे हैं ! भयानक संकट के विचार से मन आतंकित ! पिछले दिनों राजीव जी ने जब भारतीय युवक कांग्रेस के महाधिवेशन को सम्बोधित करते हुए युवकों को आगे निकलकर आने के लिए कहा और 'भारत बनाओ' का आह्वान किया, तो मेरे मन में एक गीत ने जन्म लिया—

"मिल-जुल कर सब आओ
भारत देश बनाओ "।"

लेकिन मन अब सोचता है, क्या यह कहीं अधिक सही न होता यदि मैं पंक्तियां इस प्रकार से लिखता—

"मिल-जुल कर सब आओ
भारत देश बचाओ…।"

यह 'बचाओ' की बात मेरे मन में आयी थी, क्योंकि आज परीक्षा की घड़ी अपने देश के नागरिकों के सामने आ खड़ी हुई है। हमारा दायित्व बनता है कि हम गम्भीरता से विचार करें कि कैसे हम अपने को और अपने इस देश को बचायें।

सच है पिछले कई वर्षों से हम प्रगति करते आ रहे हैं। विकास हमने किया है आज और विश्व में सम्मान-जनक स्थान भी अपने देश का बनाया है, लेकिन क्या हम भारतीय नागरिकों के मन में, एक दूसरे के लिए, सम्मान बना सके या एक-दूसरे प्रदेश के बीच एकता का, स्नेह का, सम्मान का रिश्ता जोड़ने में सफल हो सके ? एक ज्वलंत प्रश्न मेरे मन को बार-बार काट रहा है . क्या हम अपनी गलतियां नहीं सुधार सकते ?

यह तो सम्भव नहीं कि मैं अकेला या मेरे जैसे अकेले लोग ऐसी सफलता पा सकें, जिससे कि देश की एकता और अखण्डता सुरक्षित रहे। यह भी सच है कि जब-जब देश के ऊपर खतरा आया, देश के हर

नागरिक के मन में उनमें उनके राष्ट्र-प्रेम, राष्ट्रीय चरित्र को उभारा और फलस्वरूप देश की एकता-अखण्डता बरकरार रही। क्यों, आज हम देश के उस प्रेम को, जो हर भारतीय चरित्र, भारतीय नागरिक के मन में है, छिपा हुआ है, उभारने में सफल नहीं हो पाते! केवल जब देश पर खतरा आये, तभी उसे देख पायेंगे। अगर हम देश के प्रति उस प्रेम को हमेशा के लिए उभार सकें, तो शायद, कोई भी शक्ति इस विश्व में नहीं होगी, जो हमें किसी भी तरह तोड़ सके, हमें आगे बढ़ने से रोक सके।

आज जिधर भी जाइए, सुनने को मिलता है, यहां पर इतने मारे गये वहां इतने, यह हुआ वह हुआ—क्या अब यही देश का लक्ष्य बच गया है आज ! यदि नहीं, तो आइए हम सोचें, गम्भीरता से बात करें कि हमें कोशिश करके किसी भी तरह ऐसा माहौल बनाना चाहिए, जिससे बचपन से ही बच्चों में देश के प्रति सच्ची श्रद्धा और सम्मान पैदा हो। आज विभिन्न राजनैतिक दल तरह-तरह की सोसाइटियां या चैरिटेबिल ट्रस्ट और ऐसी अनेक संस्थाएं, जो अपनी समझ से अच्छा काम कर रही हैं, उनके लिए कोई 'कम्पलसरी' या। हो ऐसी आवश्यकता नहीं, लेकिन उनके संविधान का एक अंग यह जरूर होना चाहिए कि वे लोगों में देश के प्रति प्रेम के बीज बो सकें। आपसी सद्भाव और सहिष्णुता पैदा कर सकने में सफल हो सकें। जिसमें देश की एकता, अखण्डता, देश का संविधान, देश का राष्ट्र-गीत, राष्ट्र-गान, देश का तिरंगा झण्डा—इन सबके प्रति सम्मान और राग-लगाव, उनके विचार और प्रसार का एक अंग होना चाहिए। अगर यह भावना हर राष्ट्रीय दल या चैरिटेबिल इंस्टीट्यूशन, या कोई भी ऐसी अन्य संस्था, उसके इंस्टीट्यूशन, अपने सदस्यों के मन में इस भावना को सर्व प्रथम की प्राथमिकता दें, उसे जगायें, तो यह पहल, जितनी देश के हित में होगी, उससे कहीं अधिक उस संस्थान और उसके सदस्यों के हित में भी होगी।

साथ-ही-साथ आप मेरे साथ यह भी महसूस करेंगे कि जितनी भी क्षेत्रीय पार्टियां हैं, जो रिजनल पार्टियां बनी हैं, डेमोक्रेसी में ऐसी पार्टियों का होना स्वाभाविक है, लेकिन इन सभी रिजनल पार्टियों का सबसे पहला उद्देश्य हो तो वह है देश की एकता, देश का सम्मान, देश की संस्कृति सुरक्षित रखने की बात। फिर उसके बाद वे अपने

क्षेत्र की बात कर सकते हैं, क्योंकि आप भी स्वीकार करेंगे कि देश के भाग्य के साथ क्षेत्र का भाग्य और उसकी भलाई जुड़ी है। अगर आज हम यह नही करते तो शायद आगे आने वाला समय एक ऐसा समय होगा, जबकि हमारे सामने क्राति के अलावा कोई दूसरा रास्ता नही दिखायी पडेगा। मेरा अपना विश्वास है कि रेव्यूलूशन की आवश्यकता ही हमें नही पड़नी चाहिए, क्योंकि हमने और हमारे देश ने हमेशा सही रास्ते पर चलने का प्रयास किया। आज अगर कुछ लोग यह समझते हैं कि वे अपने निहित स्वार्थ के लिए अपने तरीको मे देश मे गलत वातावरण बना सकते हैं, युवा-शक्ति एव किसानो की कमजोरी के कारण उनका शोषण कर सकते है तो इससे देश की एकता, अखडता मे बाधा पड़ती है, पर वे इसका विचार नही करते ? दबाव मे आने के फलस्वरूप शोषित व्यक्ति मे क्राति की भावना जागती है और वह कुछ भी करने पर आमादा हो जाता है। वह सारा विघटन न हो इसलिए हमे आज के इस पवित्र पावन पर्व पर इस बात की शपथ लेनी चाहिए, इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हमें एक सच्चे भारतीय नागरिक की भूमिका निभानी है। कह सकते हैं कि मुझे जन्म से घर-परिवार से विरासत मे मिली भावना का यह फल है कि इस तिरगे, इस अपने देश के प्रति एक अटूट लगाव महसूस करता। शायद यही कारण है कि मैं अपने तिरगे की शान हमेशा सुरक्षित रखने की बात सोचता हूं और मुझे अचानक बाबूजी की वे पक्तिया जो उन्होंने 15 अगस्त, 1965 को लाल किले से इस देश को सबोधित करके कही थी, मेरे मन मे गूज उठी हैं। उन्होंने कहा था—

> "हम रहे या न रहे,
> यह मुल्क रहेगा
> यह झडा रहेगा,
> यह तिरंगा रहेगा।"

और आज यह मुल्क भी है। यह झडा भी है। लेकिन अगर कमी है तो वह देश का राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय प्रेम से वचित होना।

आज हर भारतीय के मन में अपने देश के प्रति श्रद्धा और लगाव को हर माध्यम से तैयार करना होगा, जिससे वे अपने आप को जिस तरह के भी सीमित क्षेत्रो मे बंधे हुए है, उससे वे बाहर निकलें और देश के विकास के हर कार्यक्रम मे अपने आप को पूरी तरह से जोड़ें।

रहा था, क्योंकि मेरे मन की एक बहुत ही कमजोर नस पर मीरा ने हाथ रख दिया था।

बता रही थी मीरा—वह सामने एक छोटा-सा छप्पर है, दोनों तरफ कपड़ा-सा छन झूल रहा है और सारा कुछ खुला हुआ, बेपर्द! और सर्दी! एक कथरी में अपने दोनों बच्चों के साथ कैसे जीती होगी, वह मां!

मन ने तमाचा मारा। कलेजे में गर्म ब्लोअर धकधकाकर चल पड़ा। टूटी खाट, कोहरा, कैसे सो रहे होंगे वे बच्चे, वह मां! कड़कड़ाती इस ठंडक में वे तीनों!

लिहाफ में पड़ा अपने को नितांत नंगा और कमजोर महसूस करता मैं मीरा की बात को न जाने रात में कितनी देर तक जीता रहा। जाने कब आहट पा मीरा ने फिर टोका—नींद नहीं आ रही?

मैं चुप। अपनी जबान को तालू से लगा सूख आये हलक को सींचता रहा। लोग पक्के घर में। गद्दों की चारपाई पर। रजाई के अन्दर। सब खिड़की-दरवाजे बन्द कर सोये हैं, फिर भी सी-सी करती ठंडक लगती है, इसे मिटाने के लिए ब्लोअर या हीटर जला लेते हैं और

जाना तो कमरे की तरफ चाहता था, पर वहां न जा, उनके साथ फिर हम दोनों लॉन की तरफ चले गये और फिर बातें करते, टहलते चक्कर लगाने लगे।

टहलते, जब हम दूसरे छोर से लौट रहे थे, तो बाबूजी का वह बरामदा, जिसमें अधिकांश सुबह का समय वे बिताते थे और यदि समय मिलता तो कभी-कभी रात्रि के समय भी वे टहलते थे। और मैं याद कर देख रहा था उसी के साथ लगा है यह छोटा-सा कमरा, जिसमें वे प्रधानमंत्री, और इससे पूर्व जब वे गृहमंत्री थे, अधिकांश रहते थे। अब बाबूजी की स्मृति में इस कमरे को एक छोटा-सा संग्रहालय बना दिया गया है। जहां बाबूजी की खड़ाऊं है, एक छोटे-से कलश में बाबूजी की अस्थियां हैं, जिसकी पूजा मेरी अम्मा, पूरी श्रद्धा के साथ, रोज करती हैं।

हम टहलते, बातें करते अभी उस छोर पर ही थे कि ऐसा लगा कि उस कमरे के दरवाजे से कोई झांककर हम लोगों को देख रहा है। कौन होगा, यह जानने के लिए कमरे के निकट वाले छोर पर आया पर मैंने वहां किसी को नहीं पाया। मुझे लगा सम्भवतः किसी का होना मेरा भ्रम रहा हो। हम फिर टहलने लगे। अपनी बातों में डूबा दो-तीन चक्कर लगाने के बाद एक बार फिर जब मैं दूसरे छोर से लौट रहा था, मैंने पाया, वहां से फिर कोई देख रहा है। भ्रम को दूर करने के लिए मैंने मीरा से पूछा—कोई देख रहा है क्या? मीरा ने हामी भरी, बोली—अम्मा जी हम लोगों को देख रही हैं।

इतना सुनते ही मैं तेजी से कमरे की तरफ लपका, तभी अम्मा कमरे से बरामदे में आ गयीं। उनके निकट आते ही मैंने पूछा—क्या देख रही थीं आप?

उन्होंने पहले तो बात काटी, फिर बोलीं—तुम लोगों को साथ-साथ देख बहुत अच्छा लग रहा था।

वे बातें टाल रही हैं। मैं चुप न रहा और मैंने उनसे पुनः पूछा—आप झांक-झांक कर क्यों देख रही थीं?

वे बोलीं—तुम लोगों को टहलते देख मुझे बीते दिन याद आ गये। ठीक ऐसे ही कभी-कभी हम लोग, यानी मैं और तुम्हारे बाबूजी को यदि समय मिलता, तो हम लोग भी टहला करते थे। पर बहुत कम उन्हें समय मिलता था और मुझे याद आया कितने व्यस्त रहते थे

तुम्हारे बाबूजी !

मैं अम्मा के पास और नजदीक आ गया और अम्मा के हाथों को पकड़ते हुए बोला—बहुत छोटे थे हम लोग, जब बाबूजी हमें छोड़कर चले गये, लेकिन यह आप का धैर्य था, आप ही की हिम्मत थी कि आपने पूरे सम्मान के साथ हमें बड़े होने का अवसर दिया और आज हम लोग जो भी हैं आप के आशीर्वाद से ही हैं।

मैं जब यह कह रहा था, उस पल दूसरी ओर मैं अम्मा के मन की गहराई में भी डूबता जा रहा था क्योंकि जैसे-जैसे मैं उनसे बातें कर रहा था, मैं उनकी आखों को नम पाता जा रहा था।

कई बार बातें करते-करते मैं अम्मा से नाराज भी हो जाता हू। ऐसे ही एक अवसर पर किसी को नौकरी दिलाने की बात आयी, तो मैंने अम्मा की बात को नकार दिया। अम्मा ने बाबूजी का उदाहरण दिया कि वे कैसे गरीब, होनहार लड़कों की मदद किया करते थे, इस पर मैंने अम्मा से कहा—बाबूजी के समय और आज की राजनीति में बहुत बड़ा अन्तर आ गया है, अम्मा! आज की परिस्थितियों में सब कुछ करना इतना आसान नहीं, जितना आप समझती हैं।

याद आता है, इस पर अम्मा ने मुझसे कहा—क्या परिस्थिति ही मनुष्य को जिस रूप में ढालना चाहती है उसी रूप में ढाल लेती है। आदमी की कोशिश उसका अपना आपा कुछ नहीं होना। धैर्य के साथ अपने आदर्शों को सामने रखते हुए यदि मनुष्य प्रयास करे तो परिस्थिति को अपने अनुरूप बनाया जा सकता है।

और अम्मा ने बाबूजी का एक अनोखा उदाहरण समने रखा।

यह सुन मैं पानी-पानी हो गया। मुझे शर्म आयी और मन ग्लानि से भर आया। मैंने अम्मा से ऐसी बातें कह दी कि जिससे मैं बाबूजी का बेटा कहलाने लायक नहीं रह गया था। मैंने तुरन्त अम्मा से वादा किया—आप ने मेरी आखें खोल दी हैं। मैं बाबूजी के आदर्शों को सामने रखते हुए जैसी परिस्थिति आयेगी, आदर्शों पर अमल करने की पूरी-पूरी कोशिश करूंगा।

दोस्ती और स्वार्थ

राजनीतिक जीवन, अवाम के बीच रहते-रहते आदमी कितनी ही घरेलू परिस्थितियों से कट जाता है। मैं लगातार कोशिश करता हूं कि सब कुछ होते हुए भी अपने सामाजिक दायित्वों को बरकरार रखूं। पर कभी-कभी लगातार की भाग-दौड़, मीटिंगें और सरकारी ताम-झाम एकदम उबाऊ हो जाता है और उस दिन इसी तरह की मन स्थिति में बहुत थका हुआ दफ्तर से लौटा। इतना थका था कि जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी कुछ करने की। बस मन में यही आ रहा था कि जल्दी-से-जल्दी घर पहुंचे। मीरा मुझे खाना दे। खाना खाकर, कोई अच्छी-सी पुस्तक ले, हल्का-सा संगीत टेप रिकार्ड पर लगा लेट जाऊं। यही सब सोचते-विचारते मैं घर आ, रसोई की ओर बढ़ा और मीरा से कहा—जल्दी से मुझे खाना दो! मेरे लिए मेरी पत्नी अपने हाथों खाना बनाती हैं। खाना देने से पहले मीरा बोली—एक कार्यक्रम तो आप भूल ही गये!

भौंवें चढ़ाकर गुस्से में बोला—बाबा, अब कोई काम न बताना, पूरी तरह से चूर हो चुका हूं।

इस पर मीरा बोली—एक दोस्त के यहां आप ने कई दिन पहले जाने के लिए आज के दिन वादा किया था और शाम से कई फोन आ चुके हैं उनके।

मन में बहुत गुस्सा आ रहा था, लेकिन समय तो मेरा ही दिया हुआ था, मीरा पर गुस्सा निकालने से क्या फायदा होना!

दस, सवा-दस का समय, सरकारी गाड़ी विदा कर चुका था। मन न रहते हुए भी निजी गाड़ी निकाली और मीरा को साथ ले, हम दोस्त के घर के लिए रवाना हो गये।

गाड़ी चलाते अपने आप से बक-बक करता रहा—लोग कुछ समझते ही नहीं औरों की कठिनाई! अपना कोई काम होता तो! बार-बार पीछे पड़े रहे कि मैं समय दूं। अब मुझे क्या मालूम था कि इतना व्यस्त दिन होगा आज का, और इतनी देर हो जायेगी! काश, मैंने उन्हें समय न दिया होता, तो इस आफत से मुक्त रहता।

मैं बकता-झकता गाड़ी चलाता रहा। मेरी बक-झक पर मीरा ने टिप्पणी की—आप ने यह कैसे समझ लिया कि हर व्यक्ति आप से कुछ-

न-कुछ चाहता ही होगा या उसका कुछ-न-कुछ काम होगा। जहा तक इस परिवार का प्रश्न है, जहा हम चल रहे हैं, उन्होने आप से समय मांगा, आप ने समय दिया। एक बार समय देने के बाद चाहे जैसी भी कठिनाई हो, वहा पर जाना आप का फर्ज बनता है और फिर वे तो आपके दोस्त हैं !

उस पल मीरा की बातें मुझे जरा भी अच्छी नही लग रही थी। समय काफी हो चुका था, थक इतना चुका था और बस मन यही कर रहा था कि जल्दी-से-जल्दी वहा पहुंचू, दस-पाच मिनट लगा, खाना-पूरी कर, वापस लौट आऊं।

मीरा मेरी परेशानी को अच्छी तरह समझ रही थी। मेरा मन बदलने के लिए उन्होने चर्चा छेड दी—वे आप के दोस्त है, उन्हे आप दोस्त मानते हैं, दोस्ती स्वार्थ के लिए नही की जाती।

कभी-कभी मीरा की एक छोटी-सी बात मेरे पैरो तले की जमीन खीच लेती है। अचानक कही गयी उनकी इस बात का एक जबर्दस्त प्रभाव मुझ पर हुआ और मैंने मन की गहराई में पैठते हुए पाया : यह कैसे मन कर लिया कि उनका कोई मतलब होगा मुझे बुलाने का। जब वहा पहुचे, तो मैंने पाया, पूरा-का-पूरा परिवार यहा तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी, उस घर के, हम लोगों का इन्तजार कर रहे थे, बिना खाये-पीये।

इस सबने मीरा की बात पर एक और गहरी छाप डाली और मैं अपनी भूल समझते हुए प्रायश्चित की मुद्रा मे उन लोगो के सामने कुछ न बोल सका।

जहा 10 मिनट मे लौटने का इरादा था, वही दो-ढाई घण्टे कब बीत गये, हमे पता ही न चला।

जब लौटे तो मेरी सारी थकान, सारी परेशानी दूर-दूर तक नजर नही आ रही थी। एक अनोखे उत्साह से हमारा मन भरा हुआ था। मैं सचमुच अपनो के बीच सामाजिक स्तर पर जीकर कुछ बाट, कुछ पाकर आया था।

बाबूजी को दिये गये संकल्प को पूरा करने मे मुझे न जाने कितने-कितने लोगों का सहयोग मिला है, याद करता हू वह-सब तो मन रोमाचित हो उठता है, काश जीवन के मोड़ पर वे सारे लोग न मिलते

उन सबसे सहारा न पाता, तो क्या बाबूजी को दिये गये वादों को पूरा करने का अवसर मिलता—शायद ! शायद नहीं !

बाबूजी के न रहने पर घर का सारा भार अम्मा पर आ पड़ा था। मेरा किशोर मन उस भार को बंटाने के लिए व्याकुल हो उठता। क्या करूं कि अम्मा का हाथ बटा सकूं। परेशान भटका करता। रात में सोते-से अचानक नींद खुल जाती और लगता मैं चारों तरफ लोहे की मोटी चारदीवारी से घिरा हूं। बाहर निकलने का कोई मार्ग या रास्ता ही नहीं सूझ रहा। पब्लिक लाइफ का, लोगों की सेवा का, जो बिरवा बाबू जी मेरे मन के आगन में लगा गये, उसे बिना पानी दिये ही वे एक अनत असीम में जा छिपे हैं। सच मानिए, वह बिरवा काफी ढीठ था, सारी आंधियों के बावजूद वह बढ चला। अब जब कि इतना समय निकल चुका है, उस बिरवे की बात आप से किये बिना नहीं रहा जा सकता।

परेशान होने, भटकने, जब कहीं कोई आशा की छोर नजर न आयी तो मन में आया, क्यों न मैं इन्दिरा जी से मिलूं। मेरे लिए वे नेता होने के पहले एक मां हैं। अगर उनका ममत्व जीत सका, तो वे जरूर राह दिखायेंगी। यह विश्वास मन में घर कर गया। इसके भरोसे मैं अक्सर इन्दिरा जी से मिलता और उनसे कहता—मुझे सक्रिय रूप से राजनीति में आने का अवसर दीजिए, मैं चाहता हूं कि जिस तरह से हमारे पूजनीय पिता—लाल बहादुर शास्त्री ने पंडित जी के साथ रह कर काम किया और आजीवन उनके विश्वासपात्र रहे, अपने सम्बन्ध में, उतनी बड़ी बात तो नहीं कह सकता, शायद उतना सब मेरे लिए सम्भव भी न हो, फिर भी शास्त्री जी के पुत्र होने के नाते इतना मैं जरूर कहूंगा कि एक पारिवारिक रिश्ता, जो बाबूजी कायम कर गये हैं, उसे और पक्का बनाने में मेरी ओर से आप कोई भी कमी नहीं पायेंगी। मुझे सेवा करने का एक अवसर चाहिए। विश्वास है कि [illegible]

[illegible]

दिखाती रहेंगी। वैसी ममत्व भरी आंखों से हंसते हुए उन्होंने कहा

था—देखो, मौका मिला, तो जरूर बात करेंगे।

समय गुजरा। सीन बदला। फिर कई मुलाकातो के बाद उनके साथ एक और भेंट। मुझे ठीक याद है, एक नम्बर सफदरजग के लान का वह हरित वातावरण। हल्की-हल्की दिल्ली वाली असामयिक बूंदा-बादी और पेड़ो के कचोय रग वाले धुले, साफ, हरे पत्ते। हवा शरीर को चूमती सिहरन पैदा करती। ऐसे मे आप हों और इन्दिरा जी हों, और वे आश्वासन देते हुए आपके पीठ पर अपना स्नेहिल हाथ रख दें। उनके हाथो की वह छुअन, विश्वास कीजिए, मुझे बाबा गोरखनाथ के क्षेत्र मे ले जाकर खड़ा ही नही करती, बल्कि जीवन मे एक ऐसा मोड़ दे देती है, जैसे उस पल जनमानस के सेवा करने की बात मेरे गिरेबान में डाल दी गयी हो।

चुनाव आया, उत्तर प्रदेश विधान-सभा के लिए गोरखपुर से चुनाव लड़ने के लिए मुझसे कहा गया। गोरखपुर उससे पूर्व मेरे लिए केवल भूगोल के नक्शे में ही था। एकदम अनजाना क्षेत्र। एक अनोखी समस्या मेरे गले पड गयी थी। कैसे होगे वहा के लोग? क्या उनसे मुझे इच्छानुकूल सहयोग मिलेगा? चुनाव की बात कोसो दूर, आकाश कुसुम जैसी लगी थी उस पल।

एक अनोखा भय। जरा सोचिए, तीस साल की उम्र। पत्नी और दो बच्चे, क्या इन सबको तिलांजलि दे एक नये रण-युद्ध मे उतरा जा सकेगा? लगा सक्रिय राजनीति एक स्वप्न था। काश, वह स्वप्न ही बना रहता। घर, पत्नी, बच्चो की देख-भाल, कही अगर सफलता न मिली तो? इस 'तो' के आगे आ खडी होती, बाबूजी की महानता, उनका देश-प्रेम, उनका व्यक्तित्व, वह—छाप जो जबरन मुझसे कुछ करवा लेना चाहती थी।

बचपन से मैंने बाबू जी को सक्रिय राजनीति मे जूझते देखा था। उन्होंने तो देश के सामने कभी परिवार की बात सोची ही नही। बाबू जी ने अगर कभी हम लोगो के बारे मे सोचा होता— तब वे अग्रेजी फिरगी सरकार के आगे सीना तान जेल की रोटिया तोड़ने न जा पाते। जेल जाकर माफीनामा लिखने में देर ही कितनी लगती है, पर फिरगी सरकार उनसे माफीनामा लिखाने मे हार गई। इस [illegible]स दिया: अरे सुनील, अभी से घबरा रहे हो, तो देश

की सेवा करना चाहोगे ? पर विश्वास कीजिए, मेरे मन की [illegible] इन्दिरा जी का स्नेह और बापू जी का आशीर्वाद—जिनके बि[illegible] मेरी कोई आस्था भी नहीं। एक तरफ मेरा कमज़ोर मन मुझे [illegible] खींच रहा था, वहीं दूसरा [illegible] मन मुझे आगे बढ़ाने के [illegible] अभी तैयारी करो, [illegible] है।

हजार तरह के [illegible] से [illegible]। इस मन के [illegible] एक भारी अवधि तक [illegible] ही नहीं दिया जा रहा था। मुझे [illegible] के लिए एक सहारा चाहिए था। मित्र-मित्र से पूछा, अधिकांश का कहना - राजनीति तो जुआ है—चले चले, न चले न चले। इसमें अच्छी-खासी नौकरी को तिलांजलि ! न बाबा, मुझसे [illegible] तो [illegible] नहीं कहता ऐसा जोखिम उठाने की अभी उम्र नहीं तुम्हारी।

कुछ लोग और रुकने की सलाह दें। मन न माना, कहने लगा अरे सुनील, जीवन के जो निश्चय कुछ हैं लोग मान। काम करो सो आज कर आज करे सो अब। अगर बापूजी को दिये गये वचन को निभाना है, तो सोचने से, चिन्ता से कभी समय नहीं आयेगा करने का। उठो और कूद पड़ो। याद आती थी बापू जी की कही बातें। जनता के बीच जाने का 'यह' अवसर शायद उन्होंने मुझे न सौंपा होता। बात है उनके स्वर्गवास जाने से या यूं कहूं उनके मौत को गले लगाने से पूर्व की। वे मुझसे जो आशाएं रखते थे वे प्रश्नसूचक बनी मेरे सामने आ खड़ी हुईं, चुनौती देने लगी।

जब कुछ समझ में नहीं आया तो उन प्रश्नों का उत्तर खोजते-खोजते बरबस अम्मा के सामने जा खड़ा हुआ। मेरे अगल-बगल दो बच्चे थे और पीछे पत्नी। जिम्मेदारी का एहसास जीवन को किस तरह सालता है—काश, मैं अपने मन की पीड़ा, उलझन और ऊहा-पोह को ज्यों-का-त्यों आपके सामने रख, बता सकता, पर शब्दों में वह संभव नहीं।

किसी तरह अम्मा के सामने अपनी समस्या रखी और बोला—आप ही बताइए, मुझे क्या करना चाहिए?

अम्मा ने उल्टे ही मेरे सवाल के जवाब में एक और सवाल खड़ा कर दिया, जिसके बारे में मैंने कभी सोचा ही नहीं था। बोलीं—तुम राजनीति में आना क्यों चाहते हो, सुनील ? मुझे बताओ।

एक पल रुका और मुझे सारा रास्ता साफ, स्पष्ट-सा दिखने लगा। मैं बोला—बाबू जी की कही कितनी ही बातें हैं अम्मा, जो बार-बार मुझे झकझोरती हैं। बाबू जी के जाने कितने अरमान, कितने स्वप्न अधूरे पड़े हैं, जिन्हे वे मुझे सौंप गये हैं, जिन्हे मैंने अपने मन के गह्वर गुफा में बरसो से दबा रखा था, वे मुझे प्रेरित करती हैं, उकसाती हैं—पहल करने को, कदम उठाने के लिए।

और इन्दिरा जी ने कहा था—सुनील, तुम गोरखपुर से चुनाव जीत लोगे न ? और प्रश्न करते हुए जितनी गहरी, पैनी निगाह से उन्होंने मुझे तौला था, उससे कही अधिक चुस्त और तीखेपन के साथ मेरी अम्मा ने मुझे एक पल देखा, घूरा और फिर हस पड़ी—तब मुझसे क्या पूछते हो, बाबूजी से पूछ लो।

उनके प्रश्न के उत्तर मे इस नये प्रश्न ने एक चटखना-सा मुझे मारा। हवा के पंखों पर आकाश मे उड़ता, कल्पना के महल बनाता, मेरा मन एकदम धराशायी हो चुका था। कुछ अचकचाया-सा घूरकर देखा मैंने, अम्मा की आंखो मे और कहने लगा—बाबूजी से ! उनसे कैसे पूछा जा सकता है अब यह सब ? बाबू जी हमारे बीच कब से नही हैं—यह पूछना कैसे हो सकता है ?

अम्मा हंसती ही जा रही थी मुस्करा कर। उनसे जवाब न पा, मैं कहता ही गया—पर कोई तरीका तो बताइए, उनसे कैसे पूछा जाय।

मेरे इस सवाल पर अम्मा ने जोडा—जब भी मेरे मन में कोई बात आती है, दुविधा में पड़ जाती हूं, तो मैं तुम्हारे बाबू जी से ही सलाह-मशविरा लेती हू।

मैंने आगे कहा—मुझे भी वह तरीका बताइए कि मैं भी उनसे जवाब पा सकूं अपनी शकाओं का, समास्याओ का ?

उन्होंने कहा—अच्छा सुनील, एक काम करो। तुम दो परचियां बनाओ—एक में लिखो 'हां' और दूसरे में 'नही'।

मेरे मान जाने पर उन्होने सलाह दी—हम चलते हैं बाबूजी की समाधि पर। हमें साथ ले वे वहां गयी। हमारे साथ 'हा' और 'नही' लिखी दो परचिया थी। समाधि के सामने खडे हो अम्मा ने कहा—तोडमोड़ कर परचिया सामने रख दो और आंखें बन्द कर

बाबूजी को याद करो, बेटे ! और उनसे सवाल करो। फिर बाबू जी से किये गये सवालों के जवाब में एक परची उठाओ। उनसे जो निर्देश मिले, वही करो। वही तुम्हारे लिए बाबू जी का दिया आदेश निर्देश होगा।

काश, अम्मा ने समाधि पर आने से पूर्व यह सारी बात बताई होतीं, तो शायद मैं यहां उन्हें उलझन में डालने की कोशिश ही करता। मैंने आपसे कहा न, स्वप्न अच्छे लगते हैं, बहुत भाता है मन को कल्पना के पंखों पर उड़ना, पर जब वह स्वप्न यथार्थ का जामा पहन आ खड़ा होता है तो उससे एक-दो-चार होने पर आटे-दाल का भाव पता चल जाता है। वही सब मेरे साथ हो रहा था।

बाबूजी की समाधि पर सामने पड़ी थी परचिया लेकिन आप मेरी नयी उठ खड़ी हुई परेशानी का अदाजा लगा ही नही सकते। मन कैसा सशंकित हो उठा था उस पल। कहीं मैंने उठाया और मेरे सामने 'इनकार' वाली परची खुल गई तब। तब क्या फिर वापस लौटा जा जा सकेगा। जीवन की अभिलाषा, इच्छा और बरसो देखे, जिये, सजोये गये स्वप्न का क्या होगा ? क्या यह कहकर कि बाबूजी के न होने पर उठायी गयी परची में निकला आदेश मेरे जीवन की राह तय कर देगा। समझ में नही आता, मैं किस तरह उस क्षण के अपने मन के भाव, परेशानी और उलझन को कलेजा चीरकर के आपके सामने रख दू। मैं ऐसा भुक्त-भोगी था जिसकी गति साप-छछूदर जैसी हो उठी थी उस पल। वह सब मन की कमजोरी ही तो थी।

इन्दिरा जी के इतना पीछे पड़कर उन्हें राजी किया था, उस सारी मेहनत और भाग-दौड़ का क्या बनेगा ? कहीं सारी बातों पर पानी न फिर जाय। जहां यह विचार मन मे आया, वही यह बात भी आ सामने खड़ी हुई कि अभी तक तो सक्रिय राजनीति केवल सपनों का महल ही थी। यदि वह करनी ही पड़ी, तो जो चुनौती सामने आयेगी, क्या उसके लिए मैं सक्षम हू, उसे पूरा करने की सामर्थ्य कहां से लाऊंगा ? एक तरफ गढ़ा, दूसरी तरफ खाई। क्या करू ? कैसे करूंगा ?

पूरी तरह मन का नक्शा साफ याद आ रहा है। लगा, जैसे बाबू जी सहारे के लिए पास आ खड़े हुए हैं। ... पहली बार,

मैंने इन्दिरा जी के सामने अपने मन की गाठ खोली थी और उन्होने मेरी पीठ पर स्नेह से अपना हाथ रखा था, वही शरीर मे उसी स्थल पर उनके स्पर्श की गर्मी ताजी हो आई, वह स्पर्श इन्दिरा जी के स्पर्श से बदलकर बाबूजी वाले स्पर्श की गर्मी मे परिवर्तित हो उठा।

कैसा शान्त था वह समाधि-स्थल। मन से उलझते मैं शात खड़ा था, देखा, पाया, हल्की हवा चलने लगी है। आस-पास की झाड़ियों, पेड़ो पर हवा का स्पर्श। एक पल में सारा माहौल जैसे बदल गया। मन-ही-मन बाबूजी को याद कर प्रणाम किया। मन ने दोहराया : आपका आशीर्वाद हमेशा मिला। अभी भी वह मेरे साथ है। प्रार्थना है कि आज की तरह भविष्य मे भी वह मेरे साथ रहे और आगे भी मेरा मार्ग बताते रहे। लेकिन आज, आज जीवन के एक बहुत गम्भीर और महत्त्वपूर्ण फैसले की बात आयी है। काश, मेरे सामने यदि आप आज होते, तो हम लोग इस सवाल के जवाब मे न जाने कितनी देर और कितने दिनों तक विचार-विमर्श करते रहते, पर आज हमारे-आपके बीच कागज के ये दो छोटे टुकड़े हैं, जिसमें एक पर 'हां' और दूसरे पर 'नही' मैंने ही लिख रखा है। मेरे जीवन की धारा, मेरे जीवन का रास्ता इन दो शब्दों में से एक पर बध जाने वाली है।

मेरी आंखें बन्द थी। मन मे उतावली। बाबूजी, उनकी कितनी बड़ी कमी मैं उस पल अनुभव कर रहा था। काश, वे इस पल मेरे पास होते। और तभी मैंने आख खोली, तो पाया आस-पास पडी दोनो पर्चियो मे से एक मेरी ओर हवा के हल्के थपेडे से खिसक आई है। हल्के हिलोर से स्पदित हो मेरी ओर सरक आने वाली पर्ची मे कितना हाथ भाग्य का, कितना विधाता का है, यह मैं नही जान सकता, पर उस पल यही लग रहा था कि वह घेरा जिसे आप माहौल कहे या कुछ और वह तब मुझे अपने आस-पास अपने बाबूजी की उपस्थिति महसूस करवा रहा था। लाजमी था कि पास बढ आई हवा के झोंके वाली पर्ची ही मैं उठाऊ। मैंने उसे उठा, बिना खोले और बिना देखे अम्मा की तरफ बढा दिया।

अम्मा ने उसे बिना लिये ही मेरा हाथ, मेरी ओर लौटाते हुए कहा—यह तुम्हारे लिए है, तुम देखकर मुझे बताओ।

कहना न होगा उनसे 'हां' ही लिया था। उस पल मैंने दोनों हाथों से अपना सो भर लिया और लगा कि मेरा माथा घूम रहा है। उनकी गुच्छी की गर्मी अभी भी, जब मैं अपने माथ पर हाथ रख रहा हूं, तो मेरे माथे पर जहां पर उन्होंने प्यार से अपने अधर रख दिये थे, वह सारी जगह, पूरे सम्मान और ममतामयी ममता से भरपूर चुनचुना आती है।

इन्दिरा जी ने प्रश्न और पैनी निगाह से तोलते हुए पूछा था—सुनील, तुम गोरखपुर से चुनाव जीत लोगे?

और मेरा उत्तर—जीतूंगा जरूर, लेकिन यह बताइए आप मुझसे यह पूछ क्यों रही हैं?

साथ-साथ चलते, मेरे सवाल का उत्तर देने से पहले ठिठककर उन्होंने अति प्यार और गहरे स्नेह से मेरा हाथ पकड़ा था और वह उठी थी—इसलिए कि मैं चाहती हूं कि तुम चुनाव जीतकर ही लौटो।

यह बात बताना अनावश्यक न होगा कि इन्दिराजी में वक्त पहचानने की अदृश्यमयी ताकत थी। समय देख वे जो भी पासा रखती, हमेशा खरा उतरता।

मेरी आंखें उनसे कह रही थी कि आप के विश्वास के समक्ष मैं भी खरा उतरूंगा। आप की बात सिर आंखों पर। और उनका स्नेह मेरे चलते समय, आशीर्वाद का प्रतीक था।

राजनीति के चलते चक्के में सबसे बड़ी कमी अगर कोई आड़े आती है तो वह है समय की। कितना भी कुछ कीजिए, समय पूरा पड़ता ही नहीं। यह उस पल से ही समझ में आ गया, जब मैं दिल्ली से गोरखपुर के लिए चला। अगले दिन ढाई बजे तक गोरखपुर पहुंच नामांकन के परचे दाखिल कर देने थे।

कार से लखनऊ पहुंच मीरा और अपने दोनों बच्चों को छोड़ वहां से गोरखपुर—अनिश्चित गन्तव्य की ओर। रात साढ़े दस बजे अम्मा का आशीर्वाद ले कार में जा बैठा।

दिल्ली पीछे छूट गया।

मन एक नये उत्साह से भरा था। जोश मन से आगे भाग रहा था।

बकलम खुद गाडी चलाने के लिए स्टेयरिंग पर।

पत्नी से जो बातें हुईं, उसका लेखा-जोखा अक्षरश याद है। समय आने पर वह फिर कभी। अभी तो बस मन की जानिए जो मोटर गाड़ी से हमेशा आगे—मीलो आगे भाग रहा था।

आठ बजे लखनऊ जा धमका। वहा बैंक मे, बैंक आफ इण्डिया मे नौकरी कर रहा था उन दिनों। बिना नहाये, बिना खाये-पिये मीरा और बच्चो को लखनऊ छोड मैं लगभग दो बजे के आस-पास गोरखपुर मे था।

गोरखपुर का वातावरण तो और ही जान-लेवा। यू समझिए कि सर मुडाते ही ओले पड़े। यही से आरम्भ होती है राजनीति। बाबू जी के श्री चरणो, उनके पादारवृदो के साथ चलने की कहानी।

गोरखपुर।

वहा दो बजते-बजते कितने ही लोगों को अदाज हो उठा था कि मैं मैदान छोड कर पलायन कर चुका हू। कई लोगो ने डमी कैंडीडेट खड़े कर नामाकन भी भर डाले थे।

कई और लोगो के चेहरे पर निराशा के चिह्न इसलिए भी दिख रहे थे कि मैं क्यों ऐन वक्त पर आ पहुचा हू। उन्हे भरोसा हो चला था कि मेरे न होने पर मैदान उनके हाथ होगा।

कई लोगों के चेहरे पर अतिशय खुशी की झलक भी दिखी। लगा जैसे उन्हे कोई खोई निधि हाथ आ लगी हो। इनमे से कई लोग ऐसे थे जिन्होने बाबूजी को नजदीक से देखा और सुना था। उन्हे यह कमी महसूस हुई थी क्योकि उन्होने शास्त्री जी को खो दिया है। मुझ वहा पर देख उन्हे लगा जैसे शास्त्री जी ही फिर से उनके बीच वापस आ गये हैं। वहां गोरखपुर मे पहले पल सामने आयी ऐसी मिली-जुली प्रतिक्रिया किसी को भी सचमुच परेशान करने वाली थी। मैंने कभी इस तरह की उलझनों को जिया-भोगा नही था। हा, कभी-कभी बाबूजी के आस-पास के राजनीतिक अपनी समस्याए लेकर आते थे। वह सब मेरे लिए उस काल मे दूर की बातें थी, प्रत्यक्ष अनुभव की नही। पर मैंने मन की गहराई मे अपने को डाल उन प्रतिक्रियाओ का उत्तर जल्दी निकाल लिया, क्योकि मेरे पास मेरे बाबूजी का अनुभव था जो मुझे

विरासत मे मिला था। उस सहारे पर तो मैं गर्व कर ही सकता हूं।
अभी नामांकन पत्र भरने की प्रक्रिया मे ही था कि एका
साथ पन्द्रह-बीस लड़को का एक झुण्ड कमरे मे दाखिल हुआ। उनमें
एक युवक जिनका नाम बाद मे पता चला, शायद वह उनका
ही रहा हो, पर उस पल तो उसकी तेज आवाज ही कानों को
रही थी और वह कह रहा था—जी, स्काई लैब आ गिरा है। एक
के आदमी को गोरखपुर से चुनाव लड़ने के लिए भेजा गया है।
मैं परदेशी हूं। बाहर का हूं। देश में भी परदेश। मन ने
सुनील, सबसे पहले इस खाई को पाट बराबर करना होगा तुम्हें।
क्या किया जा सकता है? मन से मैंने प्रश्न किया।
वह बोला : इसे मित्र बना लो, सुनील! इसे जीत लो।
मैंने अपना नामांकन पत्र उसके सामने रखा और प्रस्ताव
मे उस पर हस्ताक्षर करने का अनुरोध किया।
एक पल उसने मुझे निहारा और फिर बिना कुछ कहे, बिना
उस मे हस्ताक्षर कर मेरा नाम प्रस्तावित कर दिया। आगे
चुनाव के दौरान वह मेरे काफी निकट आ गया। उसे साथ
उसने मदद की। पाया, लोगो की आम धारणा कितने गलत तथ्यों
आधारित हो, अच्छे-भलेमानस को भी गलत काम कराने पर मजबूर
कर देती है। लोगो का आरोप था कि यह नवयुवक गुमराह है।
लोगो के साथ उठता-बैठता है। गलत काम करता है।

भाषण वाली न हो, मैंने इसके लिए सजगता बरती। दूसरों को शिक्षा देना बहुत आसान है, लेकिन वह सब सिर के ऊपर से चली जाने वाली है। आखिर मैं भी पिता हूं और मेरी भी जी-जान चेष्टा और अथक कोशिश का फल यह रहा है कि लगभग हर जुमले पर बच्चे हो-होकर हंसते और ताली बजाते रहे। मेरी बात में बच्चे ही शामिल नहीं हुए बल्कि उनके अभिभावक और माता-पिता भी आनन्द लेते और हंसते रहे। उनको बताई बातों के बीच की एक घटना अभी भी याद है और शायद सारी जिन्दगी मेरे मन पर छाई रहेगी। उन दिनों बाबूजी केन्द्र में रेल मन्त्री थे और मैं दिल्ली के सेंट कोलम्बस स्कूल का विद्यार्थी।

कहना न होगा कि हमें होमवर्क मिलता और उसे पूरा न करके जाने पर केनिंग होती। मार का डर कि शायद क्रिकेट के दिन थे। मैच चल रही थी। फलस्वरूप मैं छुट्टी के सारे दिन खेलता रहा और होमवर्क पूरा नहीं कर पाया। फिर सोमवार को स्कूल जाने की बात तो यमराज के यहां जाने जैसी लगती थी। उस दिन सुबह से उठते ही बहाना बनाया कि पेट में मेरे बहुत तीखा दर्द हो रहा है। अम्मा ने बात सुनी-अनसुनी कर दी तब और कोई चारा न देख बाबूजी के पास गया। देखा वे अपनी फाइलों को निबटाने में लगे हैं। चुप उनके पास जा, पैरों के पास घुटने में उनके सिर छुपा बैठ गया। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरते पूछा—क्या बात है? स्कूल के लिए तैयार नहीं हुए?

मैंने पूरा नाटक करते हुए अपने पेट के दर्द की राम-कहानी सुनाई। उन्होंने बात सुनी और धीरे से मेरा सिर थपथपाते हुए कहा—अच्छा-अच्छा।

फिर वे अपनी फाइलें निबटाते रहे और मैं उसी तरह उनके प्यार का सान्निध्य पाता उनके पैरों के पास सिर गड़ाये बैठा रहा। मेरा ध्यान बाहर की आवाजों पर लगा था क्योंकि हरि भैया और अनिल दोनों स्कूल जाने की तत्परता में लगे थे। जब गाड़ी उन दोनों को लेकर चली गई तो बाबूजी ने फिर मेरा सिर थपथपाते कहा—जाओ, अब तुम्हारे पेट का दर्द ठीक हो गया होगा। मैं उनके मुंह की तरफ देखता रह गया। उन्होंने आगे कहा—गाड़ी गई। आज तो ठीक, अब आगे से कभी तुम्हें पेट का दर्द नहीं होना चाहिए।

इतना सुन मैं वहां भी न रुक सका, मेरी चोरी पकड़ी जा चुकी थी।

दूसरों को भी समझाने का उनका अपना तरीका था जिसे वह बड़े मन माना करता।

इस तरह की बातें कितनी छोटी-मोटी बातों को दोहराते हम चल रहे थे। गाड़ी भाग रही थी और मैंने देखा मेरा मित्र, गोरखपुर का अनाथालय साथी, वह नवयुवक पूरा अपने में खोया हुआ था। उसने न जाने कितने भाषण, कितनी मीटिंगों में मुझे सुना है, लेकिन बच्चों और उनके माता-पिता से बतियाते, भाषण करते नहीं, माईक पर बतियाते, बात कहीं करते नहीं देखा, इसलिए कार में बैठने से पूर्व वह मेरे निकट आ, हाथ छू जिन आंखों से देख रहा था, उसमें न जाने कितनी अनकही किताबों के पन्ने फड़फड़ाकर गुजर गये। और चलती कार में मैंने पाया विनम्र, मेरा बड़ा बेटा, मेरे पास आ बिलकुल मुझसे चिपककर बैठ गया और बोला—पापा, आज आप बहुत अच्छा बोले।

जब कभी भी, किसी मीटिंग या संगोष्ठी में, मेरे साथ मेरी पत्नी होती है तो मैं उनसे हर बार सवाल करता हूं अपने भाषण पर, उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए। उस सबसे मुझे अपने को जानने, सुधारने का साहस मिलता है। लगता है मेरा बेटा जो कि अब किशोर हो चला है, मेरी हर बार की इस आदत को बचपन से सुनता-देखता रहा है या कि कुछ और कि मेरे मीरा से प्रश्न करने से पहले ही कह बैठा था—पापा आज बहुत अच्छा बोले। फिर जिस तरह वह मेरी बाहों से चिपक आया, उसका वह स्पर्श, मुझे खींचकर अचानक अपने बचपन की तरफ ले गया।

उस समय मैं विनम्र से काफी बड़ा रहा हूं। शायद लगभग पन्द्रह से ऊपर। और बाबूजी मेरे थे प्रधानमन्त्री। वे एक भाषण के बाद घर लौटे थे। वहां कमरे में घर के कई और लोग थे। वे सभी बाबूजी के भाषण की प्रशंसा कर रहे थे। एक कोने में, कमरे में, बैठा मैं सभी की बातें सुनता-देखता रहा। धीरे-धीरे प्रशंसकों के चले जाने के बाद वहां कमरे में बाबूजी के साथ मैं और मेरी अम्मा ही रह गयी। मैं धीरे से उठा और बाबूजी के निकट आ बोला—आप आज बहुत अच्छा बोले··· । कहते उस क्षण मेरा गला भर आया था। कुछ आगे बोल पाना कठिन था।

बाबूजी मेरी मन.स्थिति पूरी तरह समझ रहे थे, बोले– अच्छा, आपको भी बहुत अच्छा लगा, बताइये क्या-क्या अच्छा लगा ? मैने जेब से कागज निकाल उसमे नोट की गई बातें पढकर सुनाईं। और बात के अन्त में अनायास ही यह जोड़ दिया—अगर आप अपनी बातो के साथ इतनी बात और जोड देते तो । मैं भारत के प्रधानमन्त्री से नही अपने बाबूजी से बात कर रहा था, जिससे मै अपने मन का सच बाटना चाहता था। बाबूजी ने मुसकराकर अपना सर हिला दिया। आज जब विनम्र मेरी बाहों मे चिपट, मेरे भाषण की नही, माइक पर की गयी बातचीत की तारीफ कर रहा है, तो बातो का एक पुल बन आया है, जो मेरे बेटे से ले जाकर मुझे मेरे बाबूजी से जोडता है। विश्वास कीजिए, मैं किसी गरिमा या गर्व के तहत इस घटना को आपके साथ बाटकर नही जी रहा, क्योकि जानते हैं अम्मा के नाखुश होने पर भी बाबूजी के वात्सल्य में डूबे हाथ मुझे अपने मे भर पास खींच लाये थे और वे कह रहे थे: अगली बार जब फिर कभी इस विषय पर बोलूगा तो तुम्हारी बात को जरूर जोड दूगा। ध्यान मे रखकर कहूगा।

और मुझे विदा कर मेरे बाहर आने पर वे अम्मा से बतियाने लगे थे। अम्मा अब बताती हैं कि उन्होने अम्मा को सावधान करते कहा था—बच्चो के उगते मन को, उनकी इच्छाओं को, विचारो को इस तरह कभी नही दबाना चाहिए।

विनम्र को इस तरह बाहो से चिपकाकर मैं मीरा से वह सब कहना चाहता हूं पर मीरा मूड मे नही है। कल रात हमारी उनसे गरमा-गरमी हो गयी है। हमने एक जमाने पहले यह तय किया था कि मुझे सरकारी काम से 25 और 26 को नैनीताल जाना है। हम उससे एक दिन पहले जायेंगे वहां और 24 का सारा दिन मेरा परिवार का दिन होगा और मेरे लिए छुट्टी का।

सक्रिय राजनीति मे मैं औरो की तो नही पर अपनी आपबीती होने के कारण कुछ सही बातें ऊपर आपके साथ कह, जीना चाहूगा। क्योकि पश्चिम की तरफ अपने देश मे राजनीतिज्ञ के लिए प्राइवेट और जग-जाहिर कुछ भी अलग-अलग नही होता, इसलिए उस एक दिन की छुट्टी का इन्तजार महीनों से मन मे सजो रहा था। जैसे-जैसे छुट्टी

का यह दिन नजदीक आता गया, मन का उत्साह बढ़ता गया।

23 की सुबह लखनऊ और घर आते ही पाया, मीरा अपने में व्यस्त-मस्त। सामान वगैरह नहीं रखा गया है अभी तक। पूछने पर पहली बात पत्नी ने कही—विभोर की तो छुट्टी है पर विनम्र वगैरह की नहीं, वे नहीं जा पायेंगे।

मैंने अपनी तरफ से जोड़ा—चलो, कोई बात नहीं, ये दोनों अगले दिन जब और सरकारी अफसरान मीटिंग के लिए आयेंगे, उनके साथ नैनीताल पहुंच जायेंगे। इस पर मीरा अटकी—छोड़ के जायेंगे कैसे? किसके पास? अब बड़े हो रहे हैं। ऐसी उम्र में लड़कों को अकेले नहीं छोड़ा जा सकता।

मैं पत्नी के आशय को नहीं समझ पाया और मुझे गुस्सा आ गया। उन्होंने मेरे विचारों की तनिक परवाह नहीं की। मैं बेलाग कह गया—तो मैं आपको छोड़कर जा रहा हूं। एक दिन अपना होगा। कहीं खुले में बैठूगा, पढ़ूंगा—मैं जा रहा हूं।

पत्नी ने समझाने की कोशिश की। मैं उन्हें बताने में अपने को असमर्थ पा रहा था कि इस दिन का किस बेसब्री से मुझे इन्तजार था, जिस पर उन्होंने पानी फेर दिया और वे जिन्होंने मेरी जाने कितनी तनहाइयों, कठिनाइयों में साथ दिया—जिया था, कहे जा रही थीं—रसोई की पुताई हो रही है। 28 को अम्मा जी आ रही हैं। पहली को दीवाली है, कितना-कितना काम पड़ा है घर का।

वे मुझसे उम्मीद कर रही थीं कुछ और पर मैं उनकी अपेक्षा के विपरीत और अधिक खीझ उठा था। लपककर मैंने खाने की टेबल पर फोन खींचकर पटका और खाते-पीते निजी सचिव को फोन पर कहा: आज का टिकट कैंसिल सभी लोग साथ जायेंगे 24 को।

वह गुस्से में खाने की टेबिल से उठ आया और वहां से सीधे हम स्कूल के समारोह के लिए चले आये। लौटकर खाने का मूड नहीं बना। कल सारी रात रत्ती भर पत्नी से बात नहीं की मैंने।

सुबह जब नहाने गया तो मुझमें एहसास जागा—कुछ गलती मेरी भी थी, पर दीख रहा था पत्नी के नाक पर अभी भी कल का गुस्सा सीना ताने बैठा है। अब मैं क्या करूं? कितना नीचे झुककर स्वीकार करूं कि गलती मेरी ही थी। पर समझौते का कोई रास्ता नहीं दिखता।

फिर नहाते-नहाते एक रास्ता सूझा। मैंने विभोर को सामने पा उससे कहा—बेटा, जरा मां को भेजना।

मीरा आयी।

पूछा—क्या बात है? आप बुला रहे थे?

मेरा स्वाभिमानी मन साफ इनकार कर गया—नहीं, मैंने तो नहीं बुलाया।

मीरा और भी परेशान—विभोर ने बताया, आप बुला रहे हैं।

कह वे लौट जाना चाहती है। उनके जाते-जाते मैं हाथ बढा उन्हें रोककर कहता हू—आपके नाक पर गुस्सा है न। यही चीख-चीखकर कह रहा है—मीरा गुस्सा है, देखो मीरा गुस्सा है। फिर रुककर आगे बोला—अजी, हम चल रहे हैं नैनीताल। ऐसा कीजिए कि हम ये बचे-खुचे सरकारी दो दिन अपने काम के बीच भी शान्ति से जी सकें।

और वे कह रही थी—आप इतना बताइये, गलती किसकी थी? ये गुस्सा हो खाना छोड़कर उठ जाने की—आपकी या मेरी?

आप सुनकर हंसेंगे, पति-पत्नी के बीच झगड़े का अन्त इस बात पर होता है कि 50 प्रतिशत मेरी और 50 प्रतिशत पत्नी की, सुलह हो जाती है। बाबूजी से कितनी ही बातों पर अम्मा को नाराज होते देखा है, पर पाया बाबूजी थे औंधे घड़े पर पानी। अम्मा को उलट कर न तो जवाब देते, न बेकार की बातें करते। अम्मा कहती रहती। बाबूजी चुप सब कुछ पी जाते। विषपायी शिव की तरह। बाहर की परेशानी घर में बांटते-जीते ही नहीं थे। मैं उन दोनों के बीच मौजूद रहता।

अच्छी तरह याद है। बाबूजी अम्मा का सामना नहीं करते और अन्त में समय पा अम्मा का गुस्सा उतरता और वे जो कुछ भी घर में होता उस सबको जोड़-बटोर बाबूजी के खाने के लिए कोई बहुत ही खास चीज बनाती और थाली में सजाकर ले जाती। बाबूजी अपनी मन-पसन्द खाने की चीज देख अम्मा से मुस्कराकर कहते—क्यों, आपका गुस्सा शान्त हो गया?

बाबूजी खाना खाते और अम्मा रामायण पढ़ाती। उन्हें सुनाती।

वही मेरे मन में सुलह का वह रामयुगी दृश्य चिपककर रह गया है। मेरे मन में वह या वैसी ही लालसा जीती-जागती है कि मीरा क्यों नहीं मेरी कठिनाई समझ पाती, पर वह सब पत्नी से कह पाना आज

के युग मे संभव नही है न। इसलिए कि मेरे मन मे अभी भी बदल हो जाने के बावजूद एक किशोर की छटपटाहट जीवित है, जो आज चन्द्र माग करती है। कठिनाई आज के समय की यह है कि हम रातो से चाद पर जा सकते है पर चाद को धरती पर ला नही सकते। विज्ञान ने हमसे वह कल्पना का सुनहरा जाल छीन लिया है जो कभी थाली मे पानी भरकर चाद को धरती पर उतार लाता था। हमारा चाद हमसे छिन गया है। अब वह सब बात पुराने जमाने की दादी की कहानियो-जैसी लगती है।

मेरी दादी।

मेरे पिताजी की मां का नाम था रामदुलारी, जो मुझे सुनील नहीं, मोहन कृष्ण कहकर बुलाती। उस समय बाबूजी प्रधानमन्त्री थे और वे मुझसे कहती, वह दुखियारा गरीब लडका है, उसे काम दिला दो न। उस फला को बाबूजी के प्रधानमंत्री फण्ड से पैसे दिलवा दो। बड़ा गरीब है बेचारा।

मैं उनका चहेता मोहन कृष्ण।

वे अपने पूजा-घर में बैठी रहती। मेरे घर मे वह कमरा खाने का था जहा उनकी खाट पडी होती। बाबूजी के घर में आने से, उनके घुसते ही, उनके कदमो की आहट से दादी समझ जाती थी कि बाबूजी आ गये हैं और वे बड़े प्यार से बहुत ही धीमी आवाज से कहती—नन्हे, तुम आ गये?

और शाम, बाबूजी जाने कितनी परेशानियो से लदे आए होंगे। दादी की आवाज सुनते ही उनके कदम उस कमरे की तरफ मुड जाते, जहा दादी होती। सारी उलझनो के बावजूद वे पांच एक मिनट अपनी मा की खाट पर जा बैठते। मैं देखता दादी का अपने बेटे के मुह पर, सिर पर, प्यार से हाथ फेरना।

उस नजरे को याद कर मेरा शरीर सनसना आया है। कल्पना कीजिये भारत के प्रधानमंत्री, हजार तरह की देशी, अन्तर्देशी परेशानियो से जूझते-जूझते अपनी मा के चरणो में स्नेहिल प्यार से भीग लेते। आज उस दिन को याद कर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते है। मेरी आंखो के परदे पर सिनेमा

के युग में सम्भव नहीं है न। इसलिए कि मेरे मन में अभी भी बचपन की आंखों में पलकर एक किशोर की छटपटाहट जीवित है, जो आकाश चन्द्र मांग रही है। कठिनाई आज के समय की यह है कि हम राकेट से चांद पर जा सकते हैं पर चांद को धरती पर ला नहीं सकते। मशीन ने हमसे वह कल्पना का गुलाबी जाल छीन लिया है जो कभी थाली में पानी भरकर चांद को धरती पर उतार लाता था। हमारा चांद हमसे छिन गया है। अब यह सब बात पुराने जमाने की दादी की कहानियों-जैसी लगती है।

मेरी दादी।

मेरे पिताजी की मां का नाम था रामदुलारी, जो मुझे सुनील नहीं, मोहन कृष्ण कहकर बुलातीं। उस समय बाबूजी प्रधानमन्त्री थे और वे मुझसे कहतीं, यह दुखियारा गरीब लड़का है, उसे काम दिला दो न। उस पैसा को बाबूजी के प्रधानमन्त्री फण्ड से पैसे दिलवा दो। बड़ा गरीब है बेचारा।

मैं उनका चहेता मोहन कृष्ण।

वे अपने पूजा-घर में बैठी रहतीं। मेरे घर में वह कमरा खाने का था जहां उनकी खाट पड़ी होती। बाबूजी के घर में आने से, उनके घुसते ही, उनके कदमों की आहट से दादी समझ जाती थी कि बाबूजी आ गये हैं और वे बड़े प्यार से बहुत ही धीमी आवाज से कहतीं—नन्हे, तुम आ गये?

और पाता, बाबूजी जाने कितनी परेशानियों से लदे आए होंगे। दादी की आवाज सुनते ही उनके कदम उस कमरे की तरफ मुड़ जाते, जहां दादी होतीं। सारी उलझनों के बावजूद वे पांच एक मिनट अपनी मां की खाट पर जा बैठते। मैं देखता दादी का अपने बेटे के मुंह पर, सिर पर, प्यार से हाथ फेरना।

उस सबको याद कर मेरा शरीर सनसना आया है। कल्पना कीजिये, भारत के प्रधानमन्त्री, हजार तरह की देशी, अन्तरदेशी परेशानियों से जूझते-जूझते अपनी मां के श्रीचरणों में स्नेहिल ... ए लोथ-पोथ। आज उस चित्र को याद कर मेरे रोंगटे खड़े हो ... है। मेरी आंखों के परदे पर सिनेमा की रील की तरह वह सारा

गुजरता चला जाता है जिसे शब्दों मे बांट पाना मेरे लिए संभव ही नही। ममतामयी दादी और ''

आज जब भी मैं लखनऊ से दिल्ली आता हूं, अपनी मां के पास और उनके चेहरे पर जो भाव देखता हूं तो सहसा मुझे मेरा मन खीच बाबू जी और उनकी मा के समक्ष ले जा खडा कर देता है। जब मेरी मां मुझे चूमती हैं, पुच्ची लेती हैं, तो वह सारा कुछ मैं दो धरातल पर जीता हूं एक अभी तत्काल के धरातल पर जो मेरे साथ हुआ है और एक बीते कल के साथ जिसका मेरा मन साक्षी है। जिसे मैंने बाबूजी और उनकी मा के साथ जिया-भोगा है। क्योंकि मैंने अपनी दादी को बाबूजी के बिना जीते देखा है। मा के रहते उनके बेटे का इस दुनिया से उठ जाना उस दुख की कल्पना मे ही कलेजा फटने लगता है।

बेटे के बिना मेरी दादी, रामदुलारी, नौ महीने तक जीवित रही। और पाया वे सारे समय बाबूजी की फोटो सामने रख उसे उसी स्नेह और प्यार से पुच्ची लेती-सहलाती थी, जैसे बाबूजी के शरीर को। वह देख मेरा रोम-रोम काप उठता। मेरे पास जाने पर वे कहती—मोहन कृष्ण, इस नन्हे ने जन्म से पहले नौ महीने पेट मे आ बडी तकलीफ दी और नही जानती थी कि वह इस दुनिया से कूचकर मुझे नौ महीने फिर सताएगा।

दादी का प्राणान्त बाबूजी के दिवंगत होने के ठीक नौ महीने बाद हुआ। पता नही कैसे दादी को मालूम था कि नौ महीने बाद ही उनकी मृत्यु होगी।

दादी के मरने से कुछ दिन पूर्व मई 1966 मे मुझे बैंक ऑफ इंडिया में अपरेन्टिस की नौकरी मिल गयी थी। बाबूजी के मरने के बाद हमारे घर पर तो पहाड टूट पड़ा था। मेरी पढाई चल रही थी। बाबूजी के न रहने पर मुझे कुछ और करना चाहिए। किसी भी तरह मैं अम्मा का हाथ बटाना चाहता था। पढ़ाई पूरी करके नौकरी ही तो करनी थी। तीन साल बाद नौकरी मे जो मिलेगा वह आज से कम ही होगा। इसलिए मन ने जोर दिया नौकरी कर लो, पढ़ाई पूरी करना है तो वह नौकरी मे रहकर भी की जा सकती है। बाबूजी की यह महती इच्छा थी कि मैं पढाई पूरी करू। वे होते तो बैंक की नौकरी करने की नौबत [illegible] जो अब करने जा रहा हूं।

सकते हैं कि आज भी जब आप किसी शहर से दस कोस भी बाहर चले जायें तो आपको वहा के देहात-गाव मे जो दयनीय हालत से दो-चार होना पड़ता है, उससे मन कचोटता है फिर तो वह बात तब की है जब भारत को स्वतंत्र हुए बहुत अरसा नही हुआ था। चेतगंज के मुहल्ले में आज भी कोई बहुत बडा परिवर्तन नही आया है और यही कारण है कि मैं अपने मन को आज की स्थितियो से एकाकार नही कर पाता हू। उस सारे घपले से अलग हो जाना चाहता हूं जो साधारण आदमी को दयनीय स्थिति से उबारने के बजाय, उसे उसी स्थिति मे बनाए रखने की तिकडम में लगे अपनी स्वार्थ-सिद्धि में तल्लीन हैं। अभी हाल ही में इसी तरह मन को उधेड़बुन का सिरा खोजते-खोजते मैं अम्मा से बात करते नानी तक पहुंच गया। वे तो अब जीवित नही हैं पर उनकी स्मृतियों के सहारे और अम्मा द्वारा बतायी गयी बातों के सहारे एक चित्र मन मे खडा होता है और उसमे रग भरते मैं अम्मा से पूछता हूं—हम सब अपनी नानी को मावा क्यो कहते थे, अम्मा ?

वे बताती है—जाने कब उनके बडे भाई-बहन ने बोलना आरंभ करते हुए बजाय मां या अम्मा कहने के बरबस मावा कह डाला और तब से सभी उन्हें मावा कहने लगे और कभी किसी ने यह कहने-जानने-समझने की कोशिश भी नही की। छोटे कस्बों-शहरो और मुहल्लों में अक्सर ऐसा होता है कि एक बात चल पडी, तो सभी के लिए ब्रह्म-वाक्य बन जाती है, और उस पर कोई प्रश्नचिह्न नही खडा करता। जैसे एक आदमी या लड़के का मामा धीरे-धीरे सारे मुहल्ले का और बढते-बढ़ते जगत-मामा बन जाता है। यही नही, एक मुहल्ले का दामाद सारे मुहल्ले वालो का दामाद माना जाने लगता है और पूजनीय हो उठता है।

उस समय छोटा था पर फिर भी समझ थी और बाबू जी के साथ उनके प्रधानमंत्री बनने के बाद हम लोग चेतगंज आये थे। हमने इस तरह पहले उन्हें यानी बाबू जी को लोगो के साथ मिलते-बात करते और हल्के-फुल्के ही बतियाते कभी नही देखा था, जैसे कि अपने साले चंद्रिका प्रसाद यानी मेरे मामा के साथ पेश आये थे। क्या मजेदार चुटकियां वे अपने साले साहब की ले रहे थे। काश, मेरे पास उन दिनो

चाची जी के पडोस में किसी की गमी हो गयी थी। मेरी मा वहां गयी थी, हम बहनों को बाहर निकलने के लिए मना कर गयी थी, पर मा के जाने के बाद हम भी चोरी-चोरी वहा जा पहुची और पड़ोस के मकान से यह सब देखने लगी। एक कुतूहल था—यह जानना, मरने के बाद क्या होता है ? किसी की मिट्टी देखने का यह पहला मौका था—इसी से ऐसी उत्सुकता थी। जिसके यहां मृत्यु हुई थी वहा बाहर खडे व्यक्तियों में शास्त्री जी भी थे। वे चुपचाप एक ओर गुमसुम-से अपने-आप में डूबे खडे थे। हमारे मुह से अनायास निकल गया—सब लोग तो रो रहे हैं पर दुल्लर बहन का लड़का नही रो रहा है।

फिर बात आई-गई हो गयी।

अरसे बाद शादी की बात जब चलने लगी, तो न जाने कैसे मन में अपने ही कहे गये शब्दो पर हंसी आ जाती। यह क्यो और कैसे हुआ, उसका मर्म आज तक समझ मे नही आया कि दुल्लर बहन का लडका नही रो रहा—यह कान में अनायास बजते हसी क्यो आयी ? कुछ भला-भला क्यो लगा ? मेरी मा को शास्त्री जी पसद आ गये थे, अम्मा बताती हैं। वे अपनी बहू से यानी मेरी पत्नी मीरा से बातें करती हैं, मीरा खोद-खोद कर पूछती हैं और मैं बैठा सुन रहा हू वह सब। अम्मा कहती जा रही हैं—मेरी मा ने बड़ी बहन से शास्त्री जी की शादी की बात चलायी। पर तुम्हारी दादी शास्त्री जी की शादी के लिए उस समय तैयार नही थीं, इससे मा को चुप हो जाना पडा, पर बहन का विवाह दूसरी जगह हो गया।

लगभग दो साल का अरसा बीता। मेरी मा ने शास्त्री जी के साथ फिर शादी की बात उठायी। सुना, अब इस तरह का आधार बन गया है, और शादी हो जायेगी। इस पर मा ने बात भैया के आगे रखी। पर भैया ने मा को आगे बात बढाने से रोक दिया, क्योकि उनकी निगाह में दो-एक और अच्छे लडके थे। उनसे बात टूट जाने पर ही वे शास्त्री जी के बारे में सोचने वाले थे।

इसी बीच एक रात मुझे सपना आया। देखा—एक मंदिर में हम पूजा के लिए जा रही हैं। हमारे हाथ में एक माला है। जैसे ही मंदिर के अंदर जाने लगी, पाया, अंदर से शास्त्री जी बाहर आते दिखे। वे ठिठक गये। हम भी ठिठक गईं। हमने उनके गले में माला डाल दी।

जवाब में उन्होंने भी अपने हाथों के फूलों का गुच्छा हमारे हाथों में पकड़ा दिया। इसके बाद हमारी नींद टूट गयी। जाने कौन-सा पहर था। आगे नींद नहीं आयी।

अम्मा इसके बाद एक और घटना जोड़ती हैं—हम दो बहनें थे तथा एक चचेरी बहन भी साथ रहती थी। वह हमउम्र थी, इस तरह हम तीन लड़कियां घर में थी। मेरी मां प्रतिदिन गंगा जाती। नहा-धो, कपड़े धोकर लौटती। नित्य बारी-बारी से एक-एक लड़की को साथ ले जाती। उसे पहले नहला-धुलाकर मंदिर में बैठा देती, फिर खुद निबटती। इस तरह मेरी बारी गंगा जाने और मंदिर में बैठने की हर तीसरे दिन के बाद आती। इस तरह मंदिर दो दिनों के लिए छूट जाता—यह मुझे बुरा लगता था। एक दिन मैंने बिना सोचे-समझे, कि आगे क्या होगा, मंदिर से सालिग्राम की बटिया चोरी कर ली और आंचल में छिपाकर घर ले आयी। किसी को पता न चले, उन्हें मैंने तुलसी के पेड़ के नीचे थाले में छिपा दिया।

हर दिन सुबह कलेवा मिलता। वह मैं तब तक न खाती जब तक नहा धोकर पूजा न कर लेती। चोरी का यह भेद खुल गया एक दिन घर में हो-हल्ला मच उठा।

पंडित जी बुलाये गये। चोरी से लाये गये सालिग्राम की कहानी सुनाई गयी। पंडित जी बोले—बिटिया श्रद्धा और प्यार से सालिग्राम की बटिया घर लायी है, इसे चोरी नहीं कहा जा सकता। उसे पूजा करने दी जाय।

सो इस तरह मैं हर दिन सालिग्राम की पूजा करने लगी।

मरने के बाद एक दिन मैंने सालिग्राम से कहा, चाहे सामने में शा। शास्त्री जी के गले में माला डाल दी है तब आपके रहते हमारा [illegible] और नहीं होना चाहिए।

जिम्मेदारी उन पर डाल मैं निश्चिन्त हो गयी। लेकिन भैया अपनी जिद पर अड़े। हम और तो कुछ नहीं कर सकते थे, समझ में आता था कि क्या करें कि भैया के विचारों में परिवर्तन आये लगातार दूसरे तरफों को ढूंढ़ने में लगे रहे। तब हमें दुख के सा दुःख भी आने लगा। एक दिन मैंने तो भैया किसी मदद के लिए इन्कार किए, मैं डर से बिना आगा-पीछा सो

सालिग्राम को पानी मे डुबो दिया और कहा, आपने हमें डुबोने का फैसला कर लिया है तब हम भी तुम्हे डुबाये रहेंगी।

देखा कि भैया वापस आ गये हैं और मेरी मा से कह रहे हैं कि बात टूट गयी है। इतना सुन हम चुपचाप पूजा वाले कमरे में पहुच, कपडे बदल, पीताबर पहन, सालिग्राम जी को बाहर निकालती और बार-बार प्रणाम करती उन्हे धन्यवाद देती।

इस तरह भैया ने कई लडके देखे और कई जगह बातें की, पर किसी-न-किसी कारण वह सब एक-एक करके खत्म हो गयी। जानती हो—वे मीरा को संबोधित कर कहती हैं—इस तरह दस-बारह महीने और बीत गये। एक दिन भैया ने मां को बताया कि किसी नातेदार की बिचवई से बनारस मे एक लड़के से बातचीत तय हो गयी है। लडके वाले सुखी-सपन्न हैं। शहर मे अपना निजी मकान है और कुछ कारो-बार भी होता है। लेन-देन की बात भी तय हो गयी है। दो-एक दिन मे वे लड़का देखने बनारस जा रहे हैं, उसी समय बरिच्छा भी दे आयेंगे।

बरिच्छा का इंतजाम शुरू हो गया। मा प्रसन्न हुईं। लेकिन हमारी फिर मुसीबत। फिर सालिग्राम को पानी मे डुबोओ। फिर उन्हें अपना फैसला सुनाओ। लगा, इस बार सालिग्राम जी को ऊब उठना चाहिए। नाव इस पार या उस पार हो ही जायेगी। सालिग्राम महाराज शायद मेरे ऐसे कठोर फैसले से डर उठे। भैया बनारस गये और बरिच्छा ले वापस आ गये। इस बार उन्हें लडका ही पसद नहीं आया। हमारी खुशी आकाश छूने लगी। हम दौडी-दौडी पूजा घर मे गयी और सालिग्राम जी को पानी से निकाल बार-बार प्रणाम किया।

इसके बाद तुम्हारी दादी से बातचीत फिर शुरू हुई। एक दिन भैया रामनगर गये और शास्त्री की बात पक्की कर आये। लेन-देन के नाम पर अम्मा जी ने यानी सुनील की दादी ने केवल एक रुपया और कपड़े का एक थान कहा। अम्मा ने मीरा को सबोधित करते कहा—नौ मई, 1928 को तिलक चढा। रामनगर शास्त्री जी को तार देकर बुलाया गया। बनारस आने पर ही उन्हे विवाह की जानकारी हुई। उन्होने आते ही अम्माजी से कहा—शादी तय करने से पहले कम-से-कम

फिर एक दिन हमने बाबूजी के स्वतत्रता आदोलन के बारे मे जानना चाहा और अम्मा से सुना—उन दिनो हम इलाहाबाद मे लीडर रोड वाले मकान में रह रहे थे कि एक दिन बडी विचित्र समस्या हमारे सामने आ खडी हुई। पूना के पास शोलापुर मे काग्रेस से सबधित कोई काड हो गया था। क्या हो गया था वह याद नही, पर इतना याद है उस काड के कारण वहां मार्शल लॉ लगा हुआ था, लेकिन फिर भी सारी मनाही के बाद, देश के कोने-कोने से काग्रेस के वालेंटियर वहां जा रहे थे और गोलियो के शिकार हो रहे थे। तुम्हारे बाबू जी ने भी वहा जाने के लिए अपना नाम भेज दिया था। जब टंडन जी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, को यह बात पता चली, तब उन्होने तुम्हारे बाबू जी को तरह-तरह से समझाया और वहां न जाने की सलाह दी, पर वे अपनी बात पर अडिग रहे। टडन जी को बड़ी परेशानी हुई। कोई उपाय न देख उन्होने हमारे पास कहला भेजा कि हम अम्मा जी से कह उन्हे न जाने के लिए मजबूर करें।

हमारी आधी जान वहा जाने की खबर सुनते ही सूख गयी थी। जी को जैसे-तैसे ढाढ़स बांध अम्मा जी से बात कही और उन्हे रोकने के लिए कहा। हमारी बात सुन अम्मा जी, तुम्हारी दादी थोडी देर तो चुप रही। फिर धीरे से बोली—"न, हम बचवा को वहां जाने से मना नही कर सकते। उन्होने जब पैर आगे बढाया है तब पीछे हटाना ठीक नहीं। आगे जैसी भगवान की इच्छा हो! तुम चाहो तो कहो।"

इस पर मैं तो एकदम भौंचक हो पहले तो अम्मा का मुह देखती रह गयी फिर याद आया वह दिन जब शादी के बाद अम्मा हमे ले पियरी चढ़ाने के लिए गगाजी गयी थी और सुनाया था कि यह पियरी चढाने की बात उन्होने कब सोची थी। और फिर उन्होने वह घटना सुनायी—

2 अक्तूबर सन् 1904 को तुम्हारे बाबूजी का जन्म हुआ था। 14 जनवरी को संक्राति पड़ी। सवा तीन महीने के बेटे को ले तुम्हारी दादी हमारे श्वसुर के साथ सगम नहाने आयी। माघ के मेले के कारण भीड़ तो होती ही है, सक्राति के पर्व की वजह से भीड और हो गयी। किले के पास किनारे पर नाव तय करने और उस पर बैठने मे बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा। धक्का-मुक्की ऐसी कि अपने आपको सभालना

कठिन। फिसली मिट्टी की जमीन और उस पर फिसलन और रपटन। इसी धक्का-मुक्की में दादी जी के कन्धे से खिसके तुम्हारे बाबूजी अचानक गिर पड़े। घबराई हुई अम्मा जी इधर-उधर देखने लगीं। वह जमाना ही और था, बड़े-बूढ़ों के आगे मुंह खोलना दुश्वार। जब तक ससुर जी बात समझें-समझें कि भीड़ का रेला आया और सब कुछ तितर-बितर हो गया। जल्दी ही बचवा की खोजाई होने लगी, लेकिन सबसे बड़ी अचरज की बात यह थी कि चारों तरफ खोज होने के बाद भी बचवा का कहीं पता नहीं चला। तुम्हारे दादी यानी अम्मा जी बिलखती किनारे बैठ गयी। बिना बचवा को पाये वे वहां से उठने को तैयार नहीं थी। सभी लोग बचवा को खोजने-ढूंढ निकालने में लगे रहे। वहां बैठे-बैठे अम्मा ने यह मनौती मानी थी कि अगर उनके बचवा उनको मिल गये तो बचवा के ब्याह होने पर दुल्हन के साथ वे पियरी चढ़ाने गंगा मैया को आयेंगी।

जानते हो, उन्हें तुम्हारे बाबू मिले तो कैसे ? अम्मा ने आगे बताया—उधर किनारे पर जो नावें खड़ी थी, उनमें से एक में, तुम्हारे बाबूजी जा गिरे थे। हुआ यह कि एक नाव, जिसमें सवारियां पूरी भर चुकी थी, संगम की तरफ जा रही थी। नाव के इस सिरे पर, जो घाट की तरफ था, एक दूधवाला अपनी टोकरी लिये बैठा था और उसी टोकरी में शास्त्री जी जा गिरे थे। दूधवाला और नाव की सवारियां गिरे हुए बच्चे को देख भौचक रह गये। बच्चा किसका है और किधर से आ गिरा, भीड़-भाड़ में यह जान पाना कठिन हो गया था। दूधवाले के कोई संतान नहीं थी, इसलिए वह बहुत प्रसन्न था। नाव में बैठे दूधवाले से परिचित व्यक्तियों ने दूधवाले को बधाई दी कि गंगा मैया की कृपा से उसे एक लड़का मिल गया। दूधवाले ने अपनी मिरजई उतार बच्चे को ढांक लिया और कपड़े के फाहे से बच्चे को दूध पिलाने लगा। नाव संगम की तरफ बढ़ी जा रही थी।

इधर गंगा के किनारे खड़े लोग बचवा को खोजने में लगे थे। करीब एक घंटे बाद वापस लौट जब नाव संगम से आ किनारे पर लगी तब संयोग से ससुर जी को शास्त्री जी उस टोकरी में पड़े दिखाई पड़ गये। पूछताछ होने लगी। लोगों की भीड़ जमा हो गयी। दूधवाला किसी हालत में बच्चा लौटाने के लिए तैयार नहीं था। सच्चाई सिद्ध

कठिन। चिकनी मिट्टी की जमीन और उस पर फिसलन और रपटन। इसी धक्का-मुक्की में दादी जी के कन्धे से चिपके तुम्हारे बाबूजी अचानक गिर पड़े। घबराई हुई अम्मा जी इधर-उधर देखने लगी। वह जमाना ही और था, बड़े-बूढ़ों के आगे मुह खोलना दुश्वार। जब तक ससुर जी बात समझें-समझें कि भीड़ का रेला आया और सब कुछ तितर-बितर हो गया। जल्दी ही बचवा की खोजाई होने लगी, लेकिन सबसे बड़ी अचरज की बात यह थी कि चारो तरफ खोज होने के बाद भी बचवा का कही पता नही चला। तुम्हारे दादी यानी अम्मा जी बिलखती किनारे बैठ गयी। बिना बचवा को पाये वे वहा से उठने को तैयार नही थी। सभी लोग बचवा को खोजने-ढूढ निकालने मे लगे रहे। यहीं बैठे-बैठे अम्मा ने यह मनौती मानी थी कि अगर उनके बचवा उनको मिल गये तो बचवा के ब्याह होने पर दुल्हन के साथ वे पियरी चढ़ाने गंगा मैया को आयेंगी।

जानते हो, उन्हे तुम्हारे बाबू मिले तो कैसे ? अम्मा ने आगे बताया—उधर किनारे पर जो नावें खड़ी थी, उनमें से एक मे, तुम्हारे बाबूजी जा गिरे थे। हुआ यह कि एक नाव, जिसमे सवारियां पूरी भर चुकी थी, संगम की तरफ जा रही थी। नाव के इस सिरे पर, जो घाट की तरफ था, एक दूधवाला अपनी टोकरी लिये बैठा था और उसी टोकरी में शास्त्री जी जा गिरे थे। दूधवाला और नाव की सवारिया गिरे हुए बच्चे को देख भौचक रह गये। बच्चा किसका है और किधर से आ गिरा, भीड़-भाड़ मे यह जान पाना कठिन हो गया था। दूधवाले के कोई सतान नही थी, इसलिए वह बहुत प्रसन्न था। नाव मे बैठे दूधवाले से परिचित व्यक्तियो ने दूधवाले को बधाई दी कि गंगा मैया की कृपा से उसे एक लड़का मिल गया। दूधवाले ने अपनी मिरजई उतार बच्चे को ढाक लिया और कपड़े के फाहे से बच्चे को दूध पिलाने लगा। नाव सगम की तरफ बढ़ी जा रही थी।

इधर गंगा के किनारे खड़े लोग बचवा को खोजने मे लगे थे। करीब एक घटे बाद वापस लौट जब नाव संगम से आ किनारे पर लगी तब संयोग से ससुर जी को शास्त्री जी उस टोकरी मे पड़े दिखाई पड़ गये। पूछताछ होने लगी। लोगों की भीड़ जमा हो गयी। दूधवाला किसी हालत मे बच्चा लौटाने के लिए तैयार नही था। सच्चाई

करने के लिए अम्मा जी को बुलाया गया। अम्मा जी ने देखते ही झट से बच्चा को गोद में भर चिपटा लिया, दूधवाले को डाटा-फटकारा! वह अपनी ही राम-कहानी दोहराये जा रहा था। अन्त में हारकर कुछ पैसे ले उसने ससुर जी की जान छोड़ी। अम्मा बच्चा को लेकर घर आयी। ऐसी थी तुम्हारी दादी। बाबूजी से एक कदम आगे। उनके आगे कुछ और कहने में कोई लाभ नहीं था। तुम्हारे बाबूजी आये। कि वे शोलापुर न जायें, खानादाना हुआ। रात में यह देख कि उनका शोलापुर जाना एकदम निश्चित है, मैंने कहा—"तो हमें भी साथ लेते चलिए!"

उन्होंने प्रश्न किया—"क्यों, तुम वहां चलकर क्या करोगी? यहां अम्मा को भी कोई देखने वाला चाहिए न!"

हम बोले—"नहीं, हम यहां अकेली नहीं रहेंगी। आप जहां जायेंगे वहीं हम भी जायेंगी।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता।" कहते वे चुप हो गये।

उनकी बात सुनकर हम रोने लगी। फिर कुछ देर बाद बड़ी रुंधी आवाज में बोले—"तुमने अगर गाली दे दी होती तब भी मुझे इतना दुख न होता, जितना तुम्हारी इन बातों से हो रहा है। मुझे तो आये दिन इस तरह के कामों में भाग लेते रहना है। तुम्हें कहां-कहां लेकर चलता फिरूंगा। अच्छा, एक शर्त पर इस बार मैं शोलापुर नहीं जाऊंगा और वह शर्त यह है कि फिर कभी भी तुम मेरे इन कामों पर अड़ंगा नहीं डालोगी। इसका वादा करो और अपनी गलती के लिए कान पकड़ो।"

उनका इतना कहना था कि हमने झट दोनों कान पकड़ लिये। उस दिन से उनके अंतिम दिन तक हम सदा भगवान् की कृपा से अपने वादे पर दृढ़ बनी रही। लेकिन उनके साथ ताशकंद न जाने का मलाल मुझे आजीवन रहेगा। यह सुनता मैं अम्मा जी की आंखों को देखता रह गया था! उस नील झील गहराई में कितना संताप, कितना दुख भरा था जिसे भारत की इन 'पहली महिला' ने शास्त्री जी को क्या-से-क्या बना दिया। यूं ही थोड़े अमेरिका वाले अपने प्रेसीडेंट की पत्नी का इतना दुलार-सम्मान करते हैं। वे जानते-मानते हैं कि ये जो उनका प्रेसीडेंट है उसके निर्माण में इन महिला का, उसकी पत्नी का कितना

ा हाथ है।

मेरे जीवन की इस छोटी-सी अवधि में जाने कितना कुछ ऐसा घटा जिसका वर्णन-बखान करता जाऊं तो एक सम्पूर्ण महाभारत का विस्तार बन जाएगा। लेकिन उन सबके लिए हम-आप किसी के पास समय कहां है, फिर भी कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें बताये बिना रहा भी तो नहीं जा सकता। आज ही के समाचार पत्र में एक समाचार मुख्य पृष्ठ पर छपा है। समाचार न छपता तो आपसे कहता भी नहीं। तीन दिसम्बर 1987। कांग्रेस की इलाहाबाद सीट खाली है। उनके चुनाव के लिए कांग्रेस किसी जाने-माने वयोवृद्ध की तलाश कर रही है। मेरी अम्मा ललिता देवी शास्त्री से कैसे किस तरह उस जगह से चुनाव लड़ने की बात कही गयी, यह तो बहुत ही व्यक्तिगत मामला है फिर भी भारत की प्रथम महिला, स्वर्गीय प्रधानमंत्री की पत्नी होने के नाते वे पुन: राजनीति में नहीं आना चाहती। उनका निर्देशन कौन करेगा जब पति थे तब की बात और थी।

और अम्मा कहती हैं— उस दिन तुम्हारे बाबूजी जेल गये, पर जाने समय यह बताकर नहीं गये कि वे नमक कानून तोड़ने जा रहे हैं। हमारे पूछने पर कि वे शाम को कब तक लौटेंगे, उन्होंने सिर्फ "जल्दी" कह दिया था।

हां, कुछ दिन पहले अम्मा के आगे जिक्र चला था। गांधी जी ने नमक कानून तोड़ने का सत्याग्रह चलाया। धीरे-धीरे वह जोर पकड़ता गया। लोग पकड़-पकड़कर जेल में ठूंसे जाने लगे। उसका जिक्र करते रात को खाना खाते सबको सुनाते तुम्हारे बाबूजी बोले—"मुझे भ शायद अब दो-चार दिनों में जेल जाना पड़े, लेकिन मेरे जेल जाने प जो कोई रोयेगा, तो मैं समझूंगा उससे मुझसे मुहब्बत कम है। सच्च मुहब्बत उसी की होगी जो बिलकुल नहीं रोयेगा।"

जिस दिन वे भेजा गये उस दिन अम्मा जी भी घर पर नहीं थ वे मेरी दोनों ननदों को साथ ले विंध्याचल चली गयी थी। उन्होंने दे दर्शन की मनौती मानी थी। मेरी तबियत खराब थी। इस कारण ह सांझ होते ही खाना बना लिया और इंतजार करती रही कि वे अ तो गरम-गरम रोटियां बना लेंगी।

शाम उतरने लगी, शास्त्री जी नहीं आये। पहले तो हम कम

जाकर लेट गयी, पर मन को शांति कहा ! शास्त्री जी को देर क्यों हो गयी ? कहां रुक गये ? मेजा में कही नमक तो नही बनाने लगे ? अपना ही पापी मन अपने को सताने लगा । होलदिल बढ गया । हम उठकर छत पर आ गयी और एकटक सडक की तरफ निहारते शास्त्री जी के आने की प्रतीक्षा करने लगी । उस तरह खडे अभी कुछ समय ही बीता था कि सडक पर एक लारी आती दिखाई पडी । मैं उन दिनो लीडर रोड वाले मकान में रह रही थी । लारी मे 'इंकलाब जिंदाबाद' और 'गांधीजी की जै' के नारे उठ रहे थे । हम मुडेर से झुककर ध्यान से देखने लगी । लारी के अन्दर बहुत से सत्याग्रही बैठे थे । बिलकुल किनारे पर शास्त्री जी बैठे हुए थे। उन्होने हमें देख हाथ हिलाया । हम उन्हें एकटक निहारती रह गयी । लारी निकल गयी । मेरा कलेजा चिर गया । आखें डबडबा आयी, लेकिन तुरत उनकी बात याद आने पर कि 'रोने वालों को मोहब्बत कम होगी' हमने झट आंखें पोछ ली ।

हम मुडेर से नीचे उतर आयी और तरह-तरह की बात मन मे आने लगी । शास्त्री जी को जेल जाते देखने का यह पहला मौका था । झुटपुटा ऐसा था कि मन अपने ऊपर ही शंका करने लगा । संदेह होता कि वह शास्त्री जी थे या कोई और, इसी के साथ यह बात भी मन में आयी कि अगर कोई और होता तो इस तरह हाथ क्यो हिलाता । वे शास्त्री जी ही थे । फिर लगता, नही, वे नही थे । इसी तरह ऊहापोह में रात बीतने लगी ।

नौ बजे के बाद अम्मा जी आयी । हमने तुम्हारे बाबूजी की गिरफ्तारी का हाल बताया । अम्मा को भी विश्वास नही हुआ । बोली—तुमने बचवा को ठीक से पहचाना था ?

"हां, वे टोपी लगाये लारी के किनारे की तरफ बैठे थे और इधर मकान की ओर देख रहे थे ।" हमने शास्त्री जी के हाथ हिलाने की बात छिपा ली थी । वह कुछ वैसी बात थी ।

"टोपी तो और लोग भी लगाते हैं । बचवा नही कोई और होगा ।"

एक तो तबियत खराब, ऊपर से होल-दिल और अम्मा द्वारा खाने के लिए जिद । कही भला ग्रास मुह में गले से नीचे उतरता और रुलाई आने-आने को होती कि उनकी बात 'रोने वाले को मुहब्बत

ज्म होगी' कि रुलाई का भी दम घुट जाता।
लगभग ग्यारह बजे बाहर के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी।
यह दस्तक शास्त्री जी की नही थी। जो सज्जन आये, उन्हे शास्त्री जी
ने भेजा था। वे कोतवाली मे बद थे। वे सचमुच जेल जा चुके थे।
अम्मा की यह बात सुन याद आया, कैसे मैने लपककर अपनी
अम्मा जी के पैर छू लिये और उनका हाथ चूमने लगा। मै अम्मा जी
की आखो मे बाबूजी को देख रहा था। कितना कुछ हमारे देश की
महिलाओ को भोगना पडा है। कितना सारा दुख उठाने के बावजूद
रोकर, जी हलका करने का भी अधिकार उन्हे नही मिला। वह
जमाना ही कुछ और था। वह धुन ही कुछ और थी जब आदमी अपने
को कष्ट देकर एक तरह का आत्म-सतोष पाता था।

कैसे बताऊ आपको कि समय-समय पर जब-तब अम्मा ने अपने
कठिन दिनो की कितनी ही बातें बतायी है। एक बार जब मै स्कूल
जाने लगा था और पढाई से कतराया तो बातों-बातो मे उन्होने
सुनाया। हमारी शिक्षा नही के बराबर थी। स्कूल मे शिक्षा मिल नही
सकी थी और बाद मे जो कुछ घर पर पढ पायी थी, वह रामायण
बाचने तक का स्तर था। वह भी बाचना बहुत शुद्ध नही, केवल काम
चलाऊ। पढने की इच्छा तो थी पर पढाई शुरू करते ही घर मे गर्म
हो गयी और हमारी पढाई छुडा दी गयी। कहा गया लडकियो क
पढाना फलता नही। इलाहाबाद मे ईदगाह रोड वाले मकान मे आ
पर हमे अपनी इस इच्छा की पूर्ति का अवसर मिला। हमारे मकान
सामने जो बगाली परिवार रहता था, उनकी एक सयानी लडकी प
जाया करती थी। वह हिन्दी की छात्रा थी, इस कारण उसे हि
अच्छी आती थी। एक दिन हमारे मन मे हुआ कि क्यो न उससे हि
ही पढ़ ली जाये। वह हमारी सुविधा के अनुसार आ भी सकती
रही बात उसे फीस के रूप मे कुछ देने की, उसके लिए हम सोच
चुकी थी।

हमने अम्मा जी से कहा कि जो चार रुपये बर्तन साफ करने
को दिये जाते हैं, उसे न देकर वही रुपये हम फीस के रूप मे इस्ते
कर सकती हैं। और रही घर के बरतनो की बात, उसके लिए

मेहनत कर लूंगी।

यह सब सोच एक दिन हमने शास्त्री जी से पूछा। शास्त्री जी खुश हुए पर हमारी दिन भर की मेहनत को देखकर हमें एक और नयी मुसीबत मे नही उलझा देना चाहते थे। इससे हमारी तंदुरुस्ती पर असर पड़ सकता था। लेकिन हम पढने लगी। घर के कामकाज से थोडा समय मिलता तो किताब लेकर बैठ जाती और जो काम वह दे जाती, उसे पूरा करती।

बाद मे तो महिला कॉलेज मे पढने का अवसर मिला और नर्सरी का भी काम सीखा। पर उस समय शास्त्री जी लगातार टोकते रहते—"अच्छी पढाई करने लगी हो। तुम्हारे लिए तो यह शारीरिक कष्ट है पर मेरे लिए मानसिक कष्ट बन गया है। भई, कुछ स्वास्थ्य का भी ध्यान रखो।"

सो तो ठीक है, हम बोली—पर पढना भी जरूरी है। कम-से-कम ठीक से बोलना-लिखना तो आ जायेगा, वरना उसमें भी आपकी ही हंसी है।

इस पर तुम्हारे बाबूजी को चुप रह जाना पडा। लेकिन चुप रहने वाले तुम्हारे बाबूजी कभी-कभी बडी ही मार्के की, गम्भीर बात कह दिया करते जिन्हे जीवन भर मैं कभी भूल नही सकती।

फैजाबाद जेल से आने पर लगभग एक साल तक शास्त्री जी बाहर रहे थे। एक दिन शाम की बात है। खाना-वाना बन चुका था। हम अम्मा जी के संग ऊपर बैठी बातें कर रही थी कि सहसा बाहर का दरवाजा खटखटाया गया। शास्त्री जी का खटखटाना हम पहचानती थी। हम जल्दी से उतरकर नीचे गयी। दरवाजा खोला। एक अजनबी आदमी को दरवाजे पर खड़ा देख उल्टे पांव ऊपर भागी। वह भी हमारे पीछे-पीछे अपने हाथ वाली लाठी से सीढियों को टेकते हुए चढने लगे। हमे घबराया और भयभीत देख अम्मा जी कारण पूछने लगी तब तक वे ऊपर आ गये।

तुम्हारे बाबूजी स्काउट ड्रेस मे टोपी लगाये ऊपर आये थे। इस तरह के कपड़ो में मैंने उनकी कल्पना भी कभी नही की थी। वे पहचान में ही नही आ रहे थे। उन्हे इस तरह देख अम्मा ने भी डांटा—"यह क्या आदत है? अकारण ही दुल्हन को डरा दिया?"

"नहीं, अम्मा ! मैं देख रहा था कि तुमने किसी और समस्या से मेरी शादी की है।"

इस पर वे धीरे से बोलीं—"इस संसार में कोई भी समस्या ऐसी डरावना कोई शेर नहीं है। मालूम हो तो उसका डटकर सामना कर सकती हैं।"

तुम्हारे बाबूजी जब बात करते-करते चुप हो जाते तो निश्चित ही कोई गंभीर बात कहा करते थे। वे उसी तरह मुस्कराकर बोले—"मुसीबत कहकर नहीं आया करती है, एकाएक ही आती है। इंसान को उसका सामना करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए तभी वह उस पर विजय पा सकता है।"

हमने अपनी अम्मा को टूटते कितनी-कितनी बार देखा है। अभी कुछ दिन पहले मेरा सबसे छोटा भाई अनायास ही छोटी-सी बीमारी में चल बसा। बाबूजी के बाद एक बहुत बड़ा हादसा अम्मा जी की इस बुढ़ाई में आ पड़ा है। उसे झेल पाना, यह अम्मा जी का जिगरा है। हम सब कितने दुखी रहे हैं पिछले दिनों। उसका वर्णन करते कलेजा फटने-फटने को हो आता है।

इस पर मुझे याद आता है बाबूजी के प्रधानमंत्री होने के बाद कितने तरह से पत्रकार और लेखक अम्मा जी से भी मिलने आते और तरह-तरह के सवाल पूछते। उस समय वयस्क न होने के कारण मैं उनमें से कितनी ही बातों को न समझ पाने के कारण भूल चुका हू पर एक बात आज भी याद है। एक सज्जन ने अम्मा से पूछा था—"प्रधानमंत्री की पत्नी होने के कारण अब आप अपने में कैसा अनुभव करती हैं ?"

और अम्मा जी ने सपाट उत्तर दिया था—"वैसे तो कुछ भी अनुभव नहीं करती, पर जब आप लोग आते हैं और इस तरह के सवाल पूछते हैं तब मालूम पड़ता है कि जरूर हमारे अंदर कोई खास चीज आ गयी है क्योंकि पहले तो आप लोग हमारे पास नहीं आते थे।"

इस पर सारे प्रेस वाले कैसे हसे थे। उस हसी और प्रधानमंत्री के पुत्र होने की बात पर मुझे भी अपनी एक भूल की याद हो आयी है।

बताया है न कि मैंने बाबूजी के रहते अभाव नहीं देखा। उनके न रहने के बाद जो कुछ मुझ पर

था कि मुझे बैंक की नौकरी करनी पडी। लेकिन उससे पूर्व बाबूजी के रहते मैं तो तब जन्मा था जब वे उत्तर प्रदेश में पुलिसमंत्री थे। उस समय गृहमंत्री को पुलिस मंत्री कहा जाता था। इसलिए मैं हमेशा कल्पना किया करता था कि हमारे पास ये छोटी गाडी नही, बडी आलीशान गाड़ी होनी चाहिए। और बाबूजी प्रधानमंत्री हुए तो वहां जो गाड़ी थी वह थी इंपाला शेवरलेट। उसे देख-देख बडा जी करता कि मौका मिले और उसे चलायें। प्रधानमंत्री का लड़का था। कोई मामूली बात नही थी! सोचते-विचारते--कल्पना की उडान भरते एक दिन मौका मिल गया। धीरे-धीरे हिम्मत भी खुल गयी थी आर्डर देने की। हमने बाबूजी के पर्सनल सेक्रेट्री से कहा—सहाय साहब, जरा ड्राइवर से कहिए इंपाला लेकर रेजिडेंस की तरफ आ जाये।

दो मिनट में गाडी आकर दरवाजे पर लग गयी। हम और अनिल भैया कही खाने पर जाने वाले थे। अनिल भैया ने कहा—मैं तो इसे चलाऊं या नहीं। तुम्ही चलाओ।"

मैं आगे बढा। ड्राइवर से चाभी मांगी। बोला—तुम बैठो, आराम करो, हम लोग वापस आते हैं अभी।

वह बेचारा क्या कहता।

गाड़ी ले चल पडा। क्या शान की सवारी थी। याद कर बदन में झुरझुरी आने लगती है। जिसके यहां खाना था, वहा पहुचा। बातचीत में समय का ध्यान नहीं रहा। देर हो गयी।

याद आया बाबूजी आ गये होंगे।

वापस घर आ फाटक से पहले ही गाडी रोक दी। उतरकर गेट तक आया। सतरी को हिदायत दी। यह सलूट-वलूट नहीं। बस धीरे से गेट खोल दो। वह आवाज करे तो उसे बन्द मत करो खुला छोड दो।

बाबूजी का डर। वह खट-पट सैलूट मारेगा तो बेतरह की आवाज होगी और फिर गेट की आवाज से बाबूजी को हम लोगों के लौटने का अंदाज हो जायेगा। वे बेकार में पूछताछ करेंगे। अभी बात ताजी है। सुबह तक बात में पानी पड चुका होगा। सतरी से जैसा कहा गया, [illegible] किचन के दरवाजे से अदर घुसा। जाते ही अम्मा

पूछा—बाबूजी आ गये ? कुछ पूछा तो नहीं ?

बोली—हां, आ गये। पूछा था। मैंने कह दिया।

आगे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी यह जानने-सुनने की। बाबूजी ने क्या कहा। फिर हिदायत दी—सुबह किसी को कमरे में मत भेजिएगा। रात देर हो गयी है। सुबह देर तक सोना होगा।

सुबह साढ़े पांच-पौने छह बजे किसी ने दरवाजा खटखटाया। नींद टूटी। मैंने बड़ी तेजी की आवाज में कहा—देर रात को आया हूं, सोना चाहता हूं, सोने दो।

यह सोचकर कि कोई नौकर होगा। चाय लेकर आया होगा जगाने।

लेकिन दरवाजे पर दस्तक फिर पड़ी। झुंझलाता जोर से बिगड़ने के मूड में दरवाजे की तरफ बढ़ा बड़बड़ाता। दरवाजा खोला। पाया, बाबूजी खड़े हैं। हमें कुछ न सूझा। माफी मांगी। बेध्यानी में बात कह गया हूं। वे बोले—कोई बात नहीं, आओ-आओ। हम लोग साथ-साथ चाय पीते हैं।

हमने कहा—ठीक है !

बस जल्दी-जल्दी हाथ-मुंह धो, चाय के लिए टेबुल पर जा पहुंचा। लगा, उन्हें सारी रामकहानी मालूम है। पर उन्होंने कोई तर्क वितर्क नहीं किया। न कुछ जाहिर होने दिया।

कुछ देर बाद चाय पीते-पीते बोले—अम्मा ने कहा, तुम लोग आ गये हो, पर तुम कहते हो रात बड़ी देर को आये। कहां चले गये थे ?

जवाब दिया—हां, बाबूजी ! एक जगह खाने पर चले गये थे।

उन्होंने आगे प्रश्न किया—लेकिन खाने पर गये तो कैसे ? जब मैं आया तो फिएट गाड़ी गेट पर खड़ी थी। गये कैसे ?

कहना पड़ा—हम इम्पाला शेवरलेट लेकर गये थे।

बोले—ओह हो, तो आप लोगों को बड़ी गाड़ी चलाने का शौक है।

बाबूजी खुद इम्पाला का प्रयोग न के बराबर करते थे और वह किसी स्टेट गेस्ट के आने पर ही निकलती थी। उनकी बात सुन मैंने अनिल भैया की तरफ देख आंख से इशारा किया। मैं समझ गया था कि यह इशारा इजाजत का है

सकेंगे।

चाय खत्म कर उन्होंने कहा—सुनील, जरा ड्राइवर को बुला दीजिए।

मैं ड्राइवर को बुला लाया। उससे उन्होंने पूछा—तुम लाग बुक रखते हो न?

उसने 'हां' में उत्तर दिया। उन्होंने आगे कहा—इंट्री करते हो? कल कितनी गाडी इन लोगों ने चलाया?

वह बोला—चौदह किलो मीटर।

उन्होंने हिदायत दी—उसमें लिख दो, चौदह किलोमीटर प्राइवेट यूज।

तब भी उनकी बात हमारी समझ में नहीं आयी। फिर उन्होंने अम्मा को बुलाने के लिए कहा। अम्मा जी के आने पर बोले—सहाय साहब से कहना सात पैसे प्रति किलोमीटर के हिसाब से पैसे जमा करवा दें।

इतना जो उनका कहना था कि हम और अनिल भैया वहा रुक नहीं सके। जो रुलाई छूटी तो वह कमरे में भागकर पहुचने के बाद काफी देर तक बन्द नहीं हुई। दोनों ही जने देर तक फूट-फूट कर रोते रहे।

आप से यह बात शान के तहत नहीं कह रहा, पर इसलिए कि ये बातें अब हमारे लिए आदत बन गयी हैं। सक्रिय राजनीति में आने पर सरकारी पद पाने के बाद क्या उसका दुरुपयोग करने की हिम्मत मुझमें हो सकती है? आप ही सोचें, मेरे बच्चे कहते हैं कि पापा, आप हमें साइकल से भेजते हैं। पानी बरसने पर रिक्शे से स्कूल भेजते हैं पर कितने ही दूसरे लोगों के लड़के सरकारी गाडी से आते हैं। उन्हें, वे छोटे हैं, कलेजा चीर कर नहीं बता सकता। समझाने की कोशिश करता हूं, जानता हूं, मेरा यह समझाना कितना कठिन है फिर भी समय होने पर कभी-कभी अपनी गाडी से छोड देता हू। अपना सरकारी ओहदा छोडकर आया हूं और आपके साथ यह सब फिर-फिर जी कर तनिक ताजा और नया महसूस करना चाहता हू। कोशिश करता हू, नीव को पुनः संजोना-संवारना कि मेरे मन का महल आज के इस तूफानी झंझावात में खड़ा रह सके।

याद आते हैं बचपन के वे हसीन दिन, वे पल जो मैंने बाबूजी के साथ बिताये। वे अपना निजी व्यक्तिगत काम मुझे सौंप देते थे और

मैं कैसा गर्व अनुभव करता था। एक होड़ भी जो हम भाइयों में लगी रहती थी। किसे कितना काम दिया जाता है और कौन उसे कितनी सफाई से करता है।

एक दिन बोले—सुनील, मेरी आलमारी काफी बेतरतीब हो रही है। तुम उसे ठीक से संवार दो और कमरा भी ठीक कर देना।

मैंने स्कूल से लौटकर यह सब कर डाला। दूसरे दिन मैं स्कूल जाने के लिए तैयार हो रहा था कि बाबूजी ने मुझे बुलाया। पूछा—तुमने सब कुछ बहुत ठीक कर दिया, मैं बहुत खुश हूं, पर वे मेरे कुर्ते कहां हैं?

मैं बोला—वे कुर्ते थे भला! कोई यहां से फट रहा था कोई वहां से। वह सब मैंने अम्मा को दे दिया है।

उन्होंने पूछा—यह कौन-सा महीना चल रहा है?

मैंने जवाब दिया—अक्तूबर का अंतिम सप्ताह।

उन्होंने आगे जोड़ा—अब नवम्बर आयेगा। जाड़े के दिन होंगे तब ये सब काम आयेंगे। ऊपर से कोट पहन लूंगा न!

मैं देखता रह गया। क्या कह रहे हैं बाबूजी? वे कहते जा रहे थे—ये सब खादी के कपड़े हैं। बड़ी मेहनत से बनाये हैं बीनने वालों ने। इसका एक-एक सूत काम आना चाहिए।

यही नहीं मुझे याद है, मैंने बाबूजी के कपड़ों की तरफ ध्यान देना शुरू किया था। क्या पहनते हैं। किस किफायत से रहते हैं। मैंने देखा था, फटा हुआ कुर्ता एक बार उन्होंने अम्मा को देते हुए कहा था—इनके रूमाल बना दो।

बाबूजी का एक तरीका था, जो अपने आप आकर्षित करता था। वे अगर सीधे से कहते—सुनील, तुम्हें खादी से प्यार करना चाहिए, तो शायद यह बात कभी भी मेरे मन में घर नहीं करती। पर बात कहने के साथ-साथ उनके अपने व्यक्तित्व का आकर्षण था जो अपने में सामने वाले को बांध लेता था और वह स्वयं उन पर अपना सब कुछ निछावर करने पर उतारू हो जाता था।

अम्मा जी से भी उन्होंने यही करवाया था। अपनी शादी की चर्चा करते अम्मा जी बताती हैं—हमारी शादी में चढ़ावे के नाम पर सिर्फ नाम मात्र गहने आये थे लेकिन जब हम विदा होकर रामनगर आईं तो वहां मुंह दिखाई में इतने गहने मिले कि थाल भर गई थी।

सभी नाते-रिश्तेदार वालों ने कुछ-न-कुछ दिया था।

जिन दिनों हम लोग बहादुरगज के मकान मे आये, उन्ही दिनो तुम्हारे बाबू के चाचाजी को कोई घाटा लगा था। किसी तरह से कोई बाकी का रुपया देना पड़ा—बात क्या थी, उसकी ठीक से जानकारी लेने की जरूरत हमने नही सोची और न ही इसके बारे मे कभी कुछ पूछ-ताछ की।

एक दिन तुम्हारे बाबूजी ने दुनिया की मुसीबतों और मनुष्य की मजबूरियों को समझाते हुए जब हमसे गहनों की माग की तो क्षणभर के लिए हमे कुछ वैसा लगा और गहना देने में तनिक हिचकिचाहट महसूस हुई, पर यह सोच कि उनकी प्रसन्नता मे हमारी खुशी है, हमने गहने दे दिये। केवल टीका, नथुनी, बिछिया रख लिये थे। वे हमारे सुहागवाले गहने थे। उस दिन तो उन्होने कुछ नही कहा पर दूसरे दिन

[illegible]

बहाना सोच लिया है। हम कह देंगी कि गाधीजी के कहने के अनुसार हमने गहने पहनने छोड़ दिये हैं। इस पर कोई भी शंका नही करेगा। तुम्हारे बाबूजी तनिक देर चुप रहे, फिर बोले—तुम्हे यहा बहुत तकलीफ है, इसे मैं अच्छी तरह समझता हू। तुम्हारा विवाह बहुत अच्छे, सुखी परिवार मे हो सकता था, लेकिन अब जैसा है वैसा है। तुम्हे आराम देना तो दूर रहा, तुम्हारे बदन के भी सारे गहने उतरवा लिये।

हम बोली—पर जो असल गहना है वह तो है। हमे बस वही चाहिए। आप उन गहनों की चिंता न करें। समय आ जाने पर फिर बन जायेंगे। सदा ऐसे ही दिन थोड़े ही रहेगे। दुख-सुख तो सदा ही लगा रहता है।

और दुख-सुख की बात पर याद आता है। बाबूजी के न रहने पर अम्मा का टीका मिटा दिया गया था और हाथ की चूड़ियां फोड़ दी गयी थी। पर नाक में हीरे की कील आज भी है। लोगो के टोकने पर उन्होंने कहा था—यह उनकी पहनाई हुई है, मेरे शरीर के साथ जायेगी।

प्रधानमंत्री होने पर बाबूजी के मद्रास जाने का कार्यक्रम बना। अम्मा जी ने बताया—हम भी उनके साथ गयीं। मद्रास की तरफ स्त्रियों में नाक में कील पहनने का बड़ा रिवाज है। करीब-करीब सभी पहनती हैं। कील हम भी पहनती हैं और उस समय भी पहने हुए थी। वहां कुछ मिलने-जुलने वाली महिलाओं ने सुझाव रखा कि अगर सोने की जगह हीरे की कील पहनें तो बड़ी फबेगी।

हमें उनका प्रस्ताव भला लगा और हीरे की कील पहनने के लिए मन ललक उठा। रात में शास्त्रीजी को फुरसत मिलने पर हमने अपनी इच्छा व्यक्त की। वे तनिक देर सोचते रहे फिर बोले—आज तुम्हारे मुंह से यह बात सुन बड़ा आश्चर्य हो रहा है। मैंने तो तुम्हें समुद्र की तरह गम्भीर और बड़ा समझा है। खैर, अगर तुम्हारी तबीयत है तो हीरे की कील बनवा दूंगा। वैसे वह सब कुछ अच्छा नही होना।

हम चुप रहीं। उन्होंने एक बहुत बड़ी बात कह दी थी। हम काफी देर तक सोचती रहीं। गलती का अंदाज हुआ। पश्चाताप हुआ, ऐसी बात क्यों कही? हमारे अंदर हीरे और सोने की भावना क्यों कर आयी। दूसरे दिन हमने उनसे कील के लिए मना कर दिया। बात आयी-गयी हो गई।

मद्रास से लौटकर हम लोग दिल्ली आये। कितने दिन हो गये थे। हमें नहीं मालूम था कि उन्होंने मद्रास में किसी से कील बनवाकर भेजने के लिए कह दिया है क्योंकि एक दिन दोपहर को जब वे भोजन के लिए आये तो उन्होंने हमें बुलाया। उस समय हम रसोई में थीं। उन्होंने हाथ-वाथ धोकर आने के लिए कहा। हाथ धोकर आने पर जेब से कील निकाल मेरे हाथों पर रख दी। हम अचरज से देखती रह गयीं।

अम्मा जी को इस बात पर सभी को चुप रह जाना पड़ा कि वे शास्त्रीजी की पहनाई कील नहीं उतारेंगी। अम्मा जी हैं, मुझे लगता है मेरी दादी का 'इक्सटेंशन' हैं। इस बात को समझाने के लिए आपके सामने उनके जीवन का एक और उदाहरण रखना होगा। जो कि मेरे जीवन को गढ़ने-बनाने-संवारने में बहुत ही उपयोगी हुआ है। आज की इस आपाधापी की जिंदगी में जबकि चारों तरफ मानव-मूल्यों का ह्रास हुआ है, लोगों को ये बातें समझ में नहीं आयेंगी—पर तनिक

गम्भीरता से सोचने पर उनका सही औचित्य सामने आ जायेगा।

बड़े-बड़े नेताओ के आने पर दादी मेरी अम्मा को लेकर खुद सभाओं और जुलूसो मे जाया करती थी और जब-तब शास्त्रीजी के साथ भी जाने को कहती। उस समय अम्मा को घूघट का विशेष ध्यान रखना पडता था। दादी को किसी का खुले मुह चलना नापसद था। उनके साथ, शऊर के साथ, बडे कायदे से चलना पडता था। तब की बातो और आज की बातो मे कितना फर्क आ गया है। अम्मा ने बताया, तुम्हारे बाबूजी ऐसा कोई भी काम नही करते थे जिससे अम्मा को, तुम्हारी दादी को ठेस लगे।

सत्याग्रह का जमाना था। तुम्हारे बाबूजी बहुत चाहते थे कि हम सत्याग्रह मे भाग लें, पर अम्माजी के कारण ऐसा नहीं हो पाता था। उनका कहना था कि हम स्त्रियो को पहले घर का काम देखने के बाद बाहर का काम देखना चाहिए।

ऐसा न होने से घर तो बिगड़ता ही है, बाल-बच्चों का जीवन भी नष्ट हो जाता है।

बाबूजी अपनी अम्मा से बहस नही कर सकते थे। उन्ही दिनों गाधीजी ने विदेशी कपडो के बहिष्कार का आदोलन चलाया और शहर मे जगह-जगह पिकेटिंग होने लगी। एक दिन नेहरूजी की पत्नी *कमला जी ने शास्त्रीजी से पूछा—"आप अपनी श्रीमतीजी को क्यो नही* निकालते है।"

"उन्हें तो जब आप निकालेंगी तभी वे निकल पायेंगी। हमसे मुश्किल है।" तुम्हारे बाबूजी ने जानबूझ कर यह ऐसा जवाब दिया था कमला नेहरूजी को। वे समझते थे कि कमलाजी के आने पर दादी अम्माजी को भेजने से इनकार नही कर सकती थीं। और हुआ भी यही।

अम्मा ने कहा—एक दिन कमलाजी आई। वे बडी सरल और सीधी थीं। हमसे बातचीत के बाद अम्माजी से हमे पिकेटिंग पर भेजने के लिए कहा। अम्माजी उनकी बातो को नही टाल सकी। दूसरे दिन हमारी तैयारी हो गई। पिकेटिंग पर जाने से पहले हमने शास्त्रीजी से पूछा कि [illegible] या होगा? उन्होने समझाया कि हमे कपडे [illegible] कर उन भाई-बहनो को, जो कपड़ा खरीदना [illegible] विदेशी वस्त्र न खरीदने का निवेदन करते

रहना है। उन्होंने इस बात को सभी तरह से समझाया कि हमें जो कुछ भी कहना, है बड़ी नम्रता से कहना है। हमारी बातों से किसी भाई-बहन को दुःख नहीं पहुंचना चाहिए।

गौतम जी की पत्नी हमारे ही मकान में रहती थी। हम और वो मिलकर एक दुकान में जो चौक में थी, घण्टाघर के पास, जाकर खड़ी हो गयीं। जो लोग कपड़ा लेने आते उन्हें कपड़ा लेने से मना करने लगीं पर संकोचवश स्त्रियों से ही अपनी बातें कह पाती थीं। हम लोगों की ड्यूटी बारह से दो तक की थी। लगभग बारह-साढ़े-बारह बजे बगल के एक दुकानदार और किसी पिकेटिंग करने वाले से कहा-सुनी हो गई। जैसे-तैसे बात बढ़ गई। भीड़ भी आ जमा हुई। इसी भीड़भाड़ में किसी ने दुकान में आग लगा दी। दुकान जलने लगी। फिर पुलिस आ गई। भगदड़ मच उठी। गौतम जी की पत्नी घबराकर बोली—"चलिए, हम भी चलते हैं। यहां रहकर क्या हम लोग अपनी बेइज्जती करायेंगी?"

घबराहट तो हमें भी हो रही थी। पर समय से पहले जाने पर कहीं वे बुरा न मान जायें, हमने उनसे कहा—"कहीं गौतम जी और शास्त्री जी बुरा न मान जायें। दो बजे तक हम लोगों को यहीं रहना चाहिए।"

वे अधिक रुकने के लिए राजी नहीं हुईं। लाचार मुझे भी उनके साथ वापस आना पड़ा।

रात में लौटने पर उन लोगों को सारा हाल मालूम हुआ तब गौतम जी अपनी पत्नी को चिढ़ाते हुए बोले—"तुम बड़ी कायर हो। इसी हिम्मत पर देश आजाद कराओगी? जब बहू रुकने को तैयार थी तब भी तुम डर गईं। बड़ी शर्म की बात है!"

अगले दिन हमारी हिम्मत कुछ खुल गई थी। और हम मर्दों से जब-तब कपड़ा न लेने का आग्रह करने लगीं। दो बजे के लगभग जब तुम्हारे बाबू और गौतम जी आये तो हम सब लोग घर आ गयीं। चौथे दिन फिर उसी समय आना हुआ। जिस दुकान के सामने हम पिकेटिंग कर रही थीं, उसमें एक भाई साहब अपनी पत्नी या बहन के साथ

सो ?"

यह सुन हम सिटपिटाई। फिर भी हमे विश्वास था कि हमारी चूडिया विदेशी नही होगी, इसलिए अपनी चूडियो की ओर सकेत करते हुए कई बार उसे सरकाते पूछा—"ये विदेशी हैं, ये विदेशी हैं ?"

वह बोला—"हा, बिलकुल विदेशी हैं। इसी बीच गोतम जी की पत्नी बोल पडी—"तू जो घडी हाथ मे बाधे हुए है, वह भी तो विदेशी है।"

दुकानदार बोला—"हा, है। मैं तो सभी कुछ विदेशी बेचता हू। विदेशी से नफरत आपको, है मुझे नही।"

तभी मेरे मन मे शका उठी अगर कही चूडिया फोडनी पडी तो घर जाकर अम्मा जी को क्या जवाब दूगी। लेकिन तभी मेरे मुह से निकला—"अच्छा, अगर आप कहते हैं कि ये चूडिया विदेशी है तो हम इनको फोड दें तो आप भी अपनी घडी फोड देंगे ?"

दुकानदार न जाने क्यो कह गया—"हा, फोड दूगा, लेकिन पहले आपको अपनी चूडिया फोडनी होगी।"

दुकानदार की बात अभी पूरी नही हुई थी कि शास्त्री जी और गोतम जी वहा पहुचे। हमने उन्हे देखते ही पूछा—"ये कह रहे हैं कि ये चूडिया विदेशी हैं !"

तुम्हारे बाबूजी ने कहा—जब ये कह रहे हैं तो हो सकती हैं, कहते उन्होने इशारा सामने रखे गज की तरफ किया और भाव जताया कि हम चूड़िया फोड़ दें। हमने चोटी से दो लाल धागे तोड़कर दोनो हाथ मे बाध लिया फिर सारी चूड़िया उतारकर गज से फोड डाली।

हमारा फोडना था कि गोतम जो की पत्नी ने दुकानदार से घड़ी उतारकर तोडने को कहा। दुकानदार आनाकानी करने लगा, वह किसी भी दशा में घड़ी तोड़ने को तैयार नही था। इस पर वह महिला, जो सामान खरीद रही थी, दुकानदार पर बिगड़ उठी और बोली—"यह तो आपकी सरासर धूर्तता है। इन लड़कियो की आपने चूड़िया तुड़वा दी और जब अपनी बारी आई तो कतरा रहे हैं। यह तो कोई बात नही हुई।"

फिर क्या था तू-तू, मैं-मैं करते बात बढ़ गई और इतनी बढ़ी कि साथ वाले सज्जन, जो कपड़ा खरीद रहे थे, मोल लिये कपड़ो मे आग लगाई ही, साथ ही दुकान मे भी आग लगा दी।

तुम्हारे बाबू जी और स्वेच्छा [illegible] कर देने से तुम लोगों के सम्बन्ध नहीं टूट सकते।

पर इसके पहले ही अम्मा जी की नज़र मेरे ऊपर पड़ी कुछ नाराज़ हो के कुर्सियों के टूटने का कारण पूछने लगीं। [illegible] बताने पर वे खिलखिलाईं। इससे उनके बचपन का [illegible] उन्होंने दूसरा बहाना बना दिया—आज उन सारी बातों पर सोचने पर अचरज होता है।

मैं इन झगड़ों का ब्यौरा नहीं दूँगा, पर जो कुछ अम्मा जी ने मुझे सुनाया है, उसे याद कर उन बातों का, उनकी जिन्दगी का, ऐसा वास्ता चित्र खड़ा किया जा सकता है। यह चित्र हमें उन कठिनाइयों का हल खोजने में मदद करता है। इसलिए जब भी मैं किसी मुसीबत में पड़ता हूँ, तो भागकर अम्मा के पास जा पहुँचता हूँ और सलाह करता हूँ—बातचीत में कोई-न-कोई हल निकल आता है। एक सही सच्चा हल।

उस दिन जब उत्तर प्रदेश सरकार के मंत्री पद से इस्तीफा देने की बात चली थी गई तो वह अम्मा जी ही थीं जिन्होंने डटकर विरोध किया और सही रास्ता बताया—"तुम कांग्रेस में पले, उसमें और बड़े हुए हो। उससे अलग होकर तुम्हारा अपना कोई अस्तित्व नहीं। तुम कुछ भी करो पर उससे अलग होने की बात का कोई अर्थ नहीं!"

"सच्चा कांग्रेसी और कौन होगा ? आत्मसम्मान के आगे पद का कोई स्थान नहीं होता।" अम्मा जी की ये बातें मेरे लिए पत्थर के अक्षर हैं। मैं चाहे जो सोचता या बोलता हूँ, वह मेरा अपना बोध है। जो अम्मा जी की आज्ञा में अन्तर नहीं। उन महत्त्वपूर्ण निर्णय में जितना हाथ अम्मा जी का है उतने कम बाबू जी का नहीं है।

वे संस्कार जिनकी नींव उन्होंने डलवाई है, जिसमें मैं ढाला गया हूँ, आज की राजनीति वाले चाहे उनका मूल्य न मानें फिर भी वही तो गहरा सच है, जैसा अपने ज़माने में बाबू जी के लिए था। हमारी जड़ें कांग्रेस में गहरी हैं जिनका मुकाबिला कहीं और हो ही नहीं सकता।

मैं आपके साथ इन सारी बातों को केवल इसलिए बाँट कर नहीं जी रहा कि इनसे मेरा रागात्मक सम्बन्ध है। मेरा कोरा सेंटिमेंटल लगाव ही नहीं है कि मैं इन सारी अनहोनी घटनाओं को घोर-घोर कर दोहरा रहा हूँ, बल्कि मैं उन बातों की तह तक पहुँचना चाहता

ा जब वे खुद लग जाते हैं और उस समय कोई हाथ बटाने आ खडा हो या सहयोग देने लगे तो हमेशा की तरह वे उसे आज भी बरदाश्त नही कर पाते। यह विचार और चरित्र की गहनता ही तो कहा जायेगा। प्रधानमत्री हैं। उन्होने घर मे प्रवेश किया है। हम बच्चों ने ढेर सारे कागज फाड़कर जगह-जगह छितरा रखे हैं। वे खाने पर जाते-जाते खाना भूल उन्हे उठाने-बीनने लगते हैं। अम्माजी दूर खडी अपने को कोस रही, अफसोस कर रही है क्योकि वे मदद करने से भी मजबूर हैं—यह उन्हे नापसन्द है। दूसरे नौकर-चाकर देख रहे हैं और कर कुछ नही सकते।

उनका यह तरीका मुझ पर ऐसी गहरी छाप डाल गया कि उनके आने पर हम सभी चौकन्ने रहने लगे। नौकर बडी-से-बडी गलती कर डालें, बाबूजी को डाटते कभी किसी ने नही सुना। एक बार तो एक नौकर की थोड़ी-सी असावधानी के कारण उनका हवाई जहाज आधे घटे लेट हो गया। हुआ यह कि जो बक्सा उनके साथ जाना चाहिए था उसे न भेजकर एक दूसरा बक्सा हवाई जहाज मे भेज दिया। गलती मालूम होने पर वह बक्सा हवाई जहाज से उतारा गया और सही बक्सा पहुंचाया गया। लेकिन इस सब के बावजूद उन्होने उससे यह जवाब-तलब भी नही किया कि ऐसी गलती कैसे हुई ?

हुए पूछा—कूलर लग गया है?

'जी हां।'

"बिना मुझसे बताये? आप लोग कोई काम करने से पहले मुझसे पूछते क्यों नहीं? क्या ये और सारे लोग जो गाड़ी में चल रहे हैं, उन्हें गर्मी नहीं लगती होगी? कायदा तो यह है कि मुझे भी यह सब सहन करना चाहिए, लेकिन उतना तो नहीं हो सकता पर जितना हो सकता है उतना तो करना चाहिए।"

कैलाश बाबू बेचारे क्या जवाब देते।

बाबूजी ने आगे कहा—"बड़ा गलत काम हुआ है। आगे गाड़ी जहां भी रुके, कूलर पहले निकलवाइए।"

मथुरा स्टेशन पर गाड़ी रुकी। कूलर निकालने के बाद गाड़ी आगे चली। आज भी उस फर्स्टक्लास में उस जगह, जहां कूलर लगा था, वहां पर लकड़ी जड़ी है।

अम्मा से यह सुन मैं अपने मन से लड़ता हूं। यह बात सिद्धांत प्रतिपादित करने की नहीं, सिद्धांत को जीने की है, उसे जीवन में उतारने की है। उन्हें साधारण देशवासियों से, उसकी कठिनाइयों से उसे उबारने की सच्ची लगन थी। उससे वे निहायत प्यार करते थे क्योंकि वे उनके बीच से ही उभरे हुए थे और इसीलिए उन्होंने मुझे भी उन आदमियों के, साधारण आदमियों के बीच जीने-समझने के लिए भेजा, अवसर दिया।

एक और गहरी बात अम्मा बताती हैं कि जब उन्हें कभी पैसे की जरूरत पड़ती तो वे अम्मा के पास से कैसे पैसे मांगकर लोगों का कष्ट-निवारण करने में सहयोग करते थे। अम्मा का अपना अनुभव है कि जब, जिस दिन वे एक हाथ में टोपी और दूसरे हाथ से सिर खुजाते बाबूजी को अंदर आते देखतीं तो वे समझ जाती थीं कि उन्हें पैसों की जरूरत पड़ गयी है। तत्काल ही वे अपनी लड़कियों—चाहे कुसुम हो या सुमन—जो भी पास में होतीं धीरे से कह देतीं—"देखो अब तुम्हारे बाबूजी रुपये मांगने वाले हैं।"

सर खुजलाते आते हुए पहले तो बाबूजी उस सम्बन्धित व्यक्ति की कठिनाइयों की चर्चा करते, तकलीफों का बयान करते और उसके बाद अम्माजी से रुपयों की मांग करते।

अम्माजी के ना-नू करने पर मुस्कराते हुए कहते—"देखिए-देखिए, किसी साड़ी की परतों में रखे होंगे। आपके पैसों से किसी की जरूरत पूरी होगी, तकलीफ दूर होगी, यह कितनी बड़ी बात है।" और अंत में अम्माजी को रुपये निकालने ही पड़ते।

अम्मा-बाबूजी का रिश्ता बखाना नहीं जा सकता। दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। और एक-दूसरे की आवश्यकताओं और मांगों को समझते थे और पूरा करने में सहयोग देते थे।

उनके आपसी सहयोग की एक और घटना याद आती है। स्वतंत्रता से पहले की बात है। अम्मा बताती हैं—जब शास्त्रीजी जेल से बाहर हुआ करते तब पंडितजी का सारा पत्रव्यवहार वही किया करते थे। और जरूरत पड़ने पर पंडितजी कितने ही मामलों पर उनसे सलाह-मशविरा भी किया करते, पर शास्त्रीजी अपने स्वभाव के अनुसार, कभी उनसे अपने लाभ की बात विरले ही की हो। पंडितजी पर शास्त्रीजी को बहुत अधिक विश्वास था। पंडितजी को लोग तरह-तरह की चिट्ठियां लिखा करते और उनसे रास्ता पूछा करते अपनी समस्याओं का। एक दिन उनके पास एक महाशय की चिट्ठी आई। जो पत्र आया उसका सारांश था कि उनको अपनी पत्नी पर शक था और उसकी वजह से पारिवारिक जीवन में कलह समा गई थी। वे किसी तरह अपनी शंका का समाधान चाहते थे। और उस पर पंडितजी का मशविरा चाहते थे। पंडितजी ने उस चिट्ठी को शास्त्रीजी के सामने रख दिया।

शास्त्रीजी जवाब टालना चाहते थे—"इसके उत्तर की क्या जरूरत है, यह बात नितांत व्यक्तिगत है।"

इस पर पंडितजी ने सलाह दी—"नहीं, जवाब दिये बिना कैसे रहा जा सकता है। तुम इसे घर ले जाकर अपनी पत्नी को दिखाना। वे अवश्य ही जवाब बतायेंगी। मुझे तो इस तरह की बातों का कोई अंदाज नहीं, कमला होती तो और बात थी।"

पंडितजी की बात टालना या काटना हो नहीं सकता था। तुम्हारे बाबूजी चिट्ठी लेकर घर आये और खाना-वाना होने के बाद टहलते-टहलते उन्होंने चिट्ठी की सारी बात बताई। हम सुनती रहीं। हमें गुमसुम देख शास्त्रीजी ने राय मांगी। हमने सहज भाव से कह दिया—

"जैसा आप हमारे बारे में सोचते हैं वही लिख दीजिए। हम समझते है, उन महाशय की समस्या सुलझ जायेगी।" तुम्हारे बाबू ने वैसा ही किया। इस बात से पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों को सही परिप्रेक्ष्य में आंका जा सकता है। व्यक्ति का भाग्य परिवार से ऊपर उठकर देश के साथ किस तरह जुड़ जाता है, उसमे उसकी पत्नी का योगदान किस तरह होता है, इसमें हम अपने घर का उदाहरण सामने रखे बिना नही रह सकते। क्योंकि हमने वह सब घटते देखा है।

बाबूजी रेलमंत्री के बाद कामर्समंत्री हुए और फिर गृहमंत्री। हमने देखा है, मेरी अम्मा की पूजा और देव-आराधना बढ़ती जाती थी। यह क्रम उनके इलाहाबाद में हुए हार्टअटैक के बाद बढ़ता ही गया है। 9 जून सन् 1964 को बाबूजी प्रधानमंत्री बने। हमारा घर एक पार्क प्लेस ही रहा। पर उसकी कायापलट हो गयी थी। अम्मा से लोग पूछते—उन्हे कैसा लग रहा है और उस सवाल से उनकी आंखों की चमक बढ़ जाती थी—वह ठीक वैसे ही था जैसे कोई मुह मे लड्डू डालकर उसका स्वाद पूछे। उस समय मेरी समझ आज से कहीं कितनी कच्ची थी पर उलट कर देखने पर उस सबका नया अर्थ सामने खुलता जा रहा है। उनका भजन-पूजन अधिक बढ़ गया था क्योंकि उनके पति पूरे राष्ट्र के भाग्य-विधाता बन गये थे। उन्हे देश की शान और सम्मान को बढ़ाना था। जो कुछ पंडितजी कर गये थे, उसे बरकरार रखते हुए आगे चलना था।

पंडितजी के अकस्मात देहांत से देश पर वज्रपात हुआ था। सभी [illegible]—नर-नारी बिलख रहे थे। और शास्त्रीजी उनके कितने निकट थे। [illegible] व्यथा की गहराई को नापा नहीं जा सकता। उनके आंसू थमते [illegible] थे। ऐसा लगता था कि जैसे उनका सर्वस्व छीन लिया गया [illegible] अब उन्हें ही देश के दीन-दुखियों का कष्ट दूर करके सगे भाई- [illegible] सुख और संतोष देना था। और यह सब कुछ [illegible] से ही संभव हो सकता था—वे मेरी मां, मेरी अम्मा का विश्वास [illegible] के भगवान की आराधना-पूजा में लगी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देश को समर्पित था। [illegible]

"जैसा आप हमारे बारे में सोचते हैं वही लिख दीजिए। हम समझते हैं इन सवालात की सच्चाई समझ जाएँगी।" तुम्हारे बाबू ने ऐसा ही किया। इस बात से पति-पत्नी के आपसी संबंधों को सही परिप्रेक्ष्य में आंका जा सकता है। व्यक्ति का अपने परिवार से ऊपर उठकर देश के साथ किस तरह जुड़ जाता है, उसमें उसकी पत्नी का योगदान किस तरह होता है इसमें हम अपने घर का उदाहरण सामने रखे बिना नहीं रह सकते। क्योंकि हमने यह सब पहले देखा है।

बाबूजी रेलमंत्री के बाद वाणिज्यमंत्री हुए और फिर गृहमंत्री। हमने देखा है, मेरी अम्मा की पूजा और देव-आराधना बढ़ती जाती थी। यह क्रम उनके इलाहाबाद में हुए हार्टअटैक के बाद बढ़ता ही गया है।

9 जून सन् 1964 को बाबूजी प्रधानमंत्री बने। हमारा घर एक घर वैसा ही रहा। पर उसकी कायापलट हो गयी थी। अम्मा से लोग पूछते—उन्हें कैसा लग रहा है और उस सवाल से उनकी आंखों की चमक बढ़ जाती थी—यह ठीक वैसे ही था जैसे कोई मुंह में लड्डू डालकर उसका स्वाद पूछे। उस समय मेरी समझ आज से कहीं कितनी कच्ची थी पर उलट कर देखने पर उस सबका नया अर्थ सामने खुलता जा रहा है। उनका भजन-पूजन अधिक बढ़ गया था क्योंकि उनके पति पूरे राष्ट्र के भाग्य-विधाता बन गये थे। उन्हें देश की शान और सम्मान को बढ़ाना था। जो कुछ पंडितजी कर गये थे, उसे बरकरार रखते हुए आगे चलना था।

पंडितजी के अकस्मात देहान्त से देश पर वज्रपात हुआ था। सभी जन—नर-नारी बिलख रहे थे। और शास्त्रीजी उनके कितने निकट थे। उनकी व्यथा की गहराई को नापा नहीं जा सकता। उनके आंसू थमते नहीं बनते थे। ऐसा लगता था कि जैसे उनका सर्वस्व छीन लिया गया हो। अब उन्हें ही देश के दीन-दुखियों का कष्ट दूर करके सगे भाई-बहनों का-सा सुख और संतोष देना था। और यह सब कुछ भगवत्-कृपा से ही संभव हो सकता था—ये मेरी मां, मेरी अम्मा का विश्वास था। इसलिए पल-प्रतिपल वे भगवान की आराधना-पूजा में लगी रहती, जिससे पति को, मेरे बाबूजी को ऐसी शक्ति मिले, सामर्थ्य मिले और वे अपने कर्तव्यों में पूरी तरह से सफल हो सकें। अब सारा समय देश को समर्पित था। इस सब काम की आद

रसो पहले ही से पडती चली आ रही थी। वे जब उत्तर प्रदेश के पुलिसमंत्री थे, नही उसमे भी पहले जब वे आजादी से पूर्व काग्रेस पार्टी का काम देखते थे तो उन्हे आर्गनाईजेशन की चीजो, मतभेदो के निवटाने की ढब बन गयी थी। वे समस्याओ की गुत्थी मे सिरा खोजने में माहिर हो गये थे और उनके फैसले जरूरत के अनुसार गहराई लिये हुए होते थे। वे विरोधियो को भी अपने खेमे मे ले आते। उन्हे अपने विचारो से झुका लेते थे। इसलिए काम उनके लिए बोझ नही था। वे अपने तरीके से विभिन्न तरह के विरोधाभासों के बीच समन्वय स्थापित करने में माहिर थे। पार्टी सगठन ने उन्हे यह महारत हासिल करवाई थी। इस सारी बातो के बावजूद वे कभी भी किसी तरह की चर्चा का विषय नही बने क्योकि उन सारी बातो मे उनका स्वार्थ-कभी आडे नही आया। वे पक्के गांधीवादी थे और राजनीति के बीच भी वे गांधी के विचारों को जीते, उसका प्रयोग करते रहे।

इस सिलसिले मे मेरी अम्मा ने एक उदाहरण दिया--तुम्हारे बाबूजी को आम बहुत पसद थे। उन दिनो शास्त्रीजी फैजाबाद जेल मे थे। हमने दो आम उनके लिए खरीदे। फैजाबाद पहुचने पर हमने दोनों आम ब्लाउज के अंदर छिपा लिये, क्योकि फाटक पर जमा करने पर अदेशा था कि खाने-पीने की चीज जाने उन तक न पहुचे। फिर यह भी लालच था कि अपने हाथों खिलाने का सौभाग्य भी मिलेगा। ऐसा अवसर कब और कहां मिल पाता है। यही सोच हमने यह विधि अपनाई और आम को छिपाकर अदर ले गयी।

जैसे ही हमने आम निकालकर शास्त्रीजी के सामने रखे, वे एकदम बिगड उठे—इसका तो हमने ध्यान ही नही किया था। कभी सोचा ही नही था कि इसमे चोरी जैसी भी कोई बात होगी और तुम्हारे बाबूजी थे जो बिगडकर कह रहे थे--"यह क्या, आप इन्हे चोरी से लेकर आई हैं। मैं इन्हें नही छुऊगा और अभी चलकर फाटक पर कहता हूं कि यह काम आपने चोरी से किया है। पूछूगा, आपकी तलाशी क्यों नही ली गयी? आपने इस तरह की हरकत कैसे की? मैं समझता हूं कि आप आम क्यों लायी हैं! मैं खा लूं तो आपको भी मौसम भर खाने को मिलेगा वरना आप खा नही पाती। यही बात है न? बडी लज्जा की बात है! अपने स्वार्थ के लिए दूसरो का भी ईमान गिराती हैं। मैं बिलकुल आम नही खाऊगा!"

उनकी इस तरह की बात सुन हमें रुलाई आ गई। और चारा ही क्या था। इतने दिनो बाद उनसे भेंट मुलाकात हुई थी। मन मे जाने कैसी कितनी बातें सोच रखी थीं, लेकिन यहा सारी उलट बात हो गई थी। वे मेरी भावना न जानते हों, ऐसी बात नही थी, फिर वे क्यों बिगड़ उठे थे, इस कारण मेरी रुलाई थमती ही नही थी। मेरे साथ आई मालवीय जी की पत्नी भी कई चीजें छिपाकर लायी थीं। फिर उन्होंने अम्माजी से और सभी लोगों से बातें की हम वैसे ही रह गई। चलते समय वे आम वापस भेज रहे थे पर गौतमजी ने यह कहकर कि वे इसे किसी कैदी को दे देंगे, वापस हो रहे आम मुझसे ले लिये।

अम्मा बताती हैं कि फैजाबाद से वापस आने पर उन्हें बाबूजी की चिट्ठी मिली थी जिसमे उन्होने अम्माजी से अपने गुस्सा होने पर अफसोस प्रकट किया था और गुस्से मे जो कुछ कह गये थे उसके लिए माफी मागी थी। फिर कितने ही दिनों बाद उन्होने अम्माजी को बताया कि मेरे चोरी से लाये दोनो आम, जिन्हे गौतमजी ने ले लिया था, एक ऐसे कैदी को मिले जो बीस बरसो से जेल काट रहा था और आम का स्वाद ही भूल चुका था।

बात कहा से आरभ हो कहां पहुंचती है, यह हम कभी भी नही आंक जोड सकते, फिर भी हमें हमेशा अपनी ओर से अपना काम करते ही जाना चाहिए। हमेशा अपनी तैयारी रखनी चाहिए, यही निर्माणकारी व्यक्तित्व की असल बात है। अवसर किसी को प्लेट मे संजो कर नही दिया जाता। उसे कोशिश करके जुटाना पडता है। उसके लिए तैयारी पूरी सजगता से करनी पडती है और अम्मा के विवरणो से मैंने यही पाया है।

बाबूजी का उस ऊंचे स्थान पर पहुंचना किसी जोड-तोड का या भाग्य का रचा खेल नही था, बल्कि एक पूरी तैयारी थी जिसमे विधान ने भी सहयोग दिया, पर उसके लिए वे बचपन से तैयारी करते ही आ रहे थे वरना कितने ही और लोग थे जिन्हें अवसर मिला पर वे उसका सही उपयोग न कर पाने के कारण, उन क्षणों को आत्मसात न कर सके, उसका फायदा लोगो को न दे सके। यह दूसरी बात है कि बाबूजी के काल का, उनके किये गये कामो का, वर्तमान परिस्थितियों में सही आकलन या सर्वेक्षण नही [illegible]

और कोई-न-कोई उस खोज को उजागर करेगा कि उनकी जड़े कहां थी जो उन्हें शक्ति देती रहीं।

शक्ति भवन ! लखनऊ।

इस भवन की बारहवी मंजिल। यह है मेरा कार्यालय। आज मैं उत्तरप्रदेश सरकार मे ऊर्जा मन्त्री हू। इस मंजिल की यह कद्दआदम खिडकिया ! इससे दिखता लखनऊ शहर का विस्तार ! अभी-अभी अपनी गोल घूमने वाली कुर्सी से मैं उठ खडा हुआ हू। बड़े अफसरान और बिजली बोर्ड के अधिकारी एक अहम मसले पर अंतिम निर्णय के बाद लौट गये हैं और मैं इस खिडकी पर खडा सामने फैले विस्तार को देख रहा हूं, जो मुझे चुनौती दे रहा है !

मैंने कितनी-कितनी बार लोगो को समझाने की कोशिश की है कि इस ऊंचाई पर आकर भी मैं अपनी जड़ो से विलग नही हुआ हूं। इस कमरे की शालीनता, वैभव मुझे मेरे 'स्व' और मेरे अपनेपन से बांटती है, क्योंकि इस कमरे से मेरा लगाव ही कितना है। मैं अवाम के बीच से उठकर आया हू और मेरी असली जगह उन सड़कों, गलियारों, चौपालो में है, जहां के साधारण जन-मानस के बीच अनवरत जाता, उनके दुख-सुख को जीता-बांटता हूं। वे जिनका मन इस बारहवीं मंजिल की ऊंचाई से कहीं अधिक विशाल और बडा है। यहां खडे इस सारे खोखलेपन की गरिमा मुझे कचोटती है लगता है वैसे ही खोखली गरिमा में घिरे सिद्धार्थ ने अचानक सड़क पर आकर एक वृद्ध, एक गरीब, एक मृत्यु से साक्षात्कार पाया था और फलस्वरूप वे सब कुछ त्यागकर चल पड़े थे वैराग्य के रास्ते पर !

वैराग्य का मोह जाने मुझे कितने-कितने पल और किन-किन अवस्था में बींधता है, नोचता और मन मे बेचैनी पैदा करता है। जब भी मैंने अपने इस बेचैन मन को खोलने की चेष्टा की, पाया कि लोग मुझे समझ नही पाते, केवल मीरा के या मेरी मा के। आज की इस आपाधापी में मेरा कहना यह सब हल्का और ढपोरशखी न हो उठे, इसलिए चाहकर भी मैं वह सब किसी के भी साथ बांटकर नही जी पाता, पर यहां इस कागज पर वह सब आपके साथ एक नितात निज के स्तर पर बाटने-जीने से तो कोई रोक नही सकता। आप तो सुनकर मेरी बात पर नहीं हसेंगे न ! इसलिए यहा, शक्ति भवन की इस

थी का चश्मा लेकर निश्चित समय पर घर के लॉन या कमरे
राजता। पास एक होमियोपैथी की किताब भी जुटा ली थी।
ह दवा बांटने का स्वांग रचता। लेकिन भाग्य, उसने मेरे साथ
बड़ा मजाक किया। स्वतंत्र भारत में जन्मा मैं अपने सारे
सपनों को बाबूजी के निधन के साथ खो बैठा।

टे हुए सपनों के साथ अतीत में जीना कितना कठिन, कितना
ह, कितना दुखद होता है! अगर मैं अपने कलेजे को चीर उस
तस्वीर आपको दिखा सकूं, तो आपको मिलेंगे वहां टूटे, कटी-
ली वाले स्टैथेस्कोप, बिखरी हुई दवा की शीशी-बोतलें और
थड़े उस डॉक्टरी की किताब के पन्ने, जो अभी भी हवा के
से जीवित मन के आंगन में फड़फड़ा रहे हैं।

च मानिए बाबूजी का आकस्मिक निधन, और सारे परिवार के
हम सब, एक पल में भारत के अति साधारण परिवार में वापस
आये थे। देश के सिवा बाबूजी का अपना क्या था? उन्होंने कभी

की है थोड़ी-बहुत, और पाया है बिना गांधी बने, गांधीजी को समझ पाना कितना कठिन है ! आज बाबूजी होते तो पूछता—आज के संदर्भ में गांधीजी का धर्म क्या होता ? उससे शायद कोई सही रास्ता निकलता। पर वे नहीं हैं इसलिए राजनीतिक नेतृत्व से अलग हो गांव में लौटना और जनमानस की सेवा का संकल्प, उनकी खिदमत करने का साहस जुटाने में और कितना समय लगेगा—यह मेरा मन हर बार शक्ति भवन की बारहवीं मंजिल पर तनिक एकांत पाने की चुनौती कर बैठता है।

बाबूजी उस दिन अपने चुनाव क्षेत्र इलाहाबाद जनपद में आये थे और वे किस तरह द्रवित और विह्वल हो उठे थे, क्योंकि वे प्रधानमंत्री थे और उनका चुनाव क्षेत्र इलाहाबाद का वह मांडा गांव पिछड़ा हुआ था। यहां तक कि पानी की सही व्यवस्था तक नहीं थी। लोग पानी खरीदकर पीते थे या कि यों कहें पानी तक बिकता था। वहां, ऐसे इलाके में उनका कार्यक्रम रखा गया। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद उनसे लोगों की स्थिति देखी नहीं गयी और उन्होंने अम्मा से कहा—मैं एक दिन राजनीति से सन्यास ले अपने इस क्षेत्र में आ बसूंगा, यहां के लोगों की सेवा करूंगा !

बाबूजी दूसरी बार लौट उस क्षेत्र में नहीं जा सके। उनका वह अधूरा सपना अम्मा को उस गांव, उस क्षेत्र में खींच लाया है और बाबूजी के निधन के नौ-दस महीने बाद अम्मा वहां लौटी हैं और 19 अक्तूबर 1966 को उन्होंने वहां 'लालबहादुर शास्त्री सेवा निकेतन' के नाम से मांडा में एक केंद्र स्थापित किया जिसका मुख्य उद्देश्य है—उस जन समुदाय की सेवा करना, उनके जीवन-स्तर को उठाना, उसमें परिवर्तन लाना, जिससे वे स्वावलंबी हो अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

अम्मा के साथ उस केंद्र से जुड़कर मैं अपना दायित्व तो पूरा नहीं कर सका हूं। बाबूजी के चले जाने के बाद मैं वह सब नहीं कर सका जो मेरा मन चेता था—सपना था और की बैंक की अफसरी। वहां काम करते मन का असंतोष बढ़ता ही गया। मैंने कितनी-कितनी तरह से अपने को उस सबमें ढालने-खपाने की कोशिश की, पर नौकरी का सीमित दायरा मुझे कुछ और करने, बड़े क्षेत्र में जाने के

लिए लगातार प्रेरित करता रहा, उकसाता रहा, क्योंकि जहां भी जरा-सा अवसर मिला है मैं अपने को रोक नहीं सका हूं और बिना सोचे-समझे आंधी में कूद पड़ा हूं। चाहे वह मेरे मित्रों की परेशानी हो, परिवार की हो, देश की हो। मुझे याद आता है सक्रिय राजनीति में आने के लिए जब-तब मैं इंदिराजी से मिलता था और जहां वे मेरी भावनाओं को समझती थीं वहीं दूसरी ओर एक साधारण राजनीतिज्ञ की तरह मैं अपना प्रयास हर स्तर पर जारी रखे हुए था।

सुबह-सुबह उठता। उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षा उस समय मोहसिना किदवई जी थीं, उनके घर पहुंच, लॉन में जा खड़ा हो जाता, मिलने के लिए। कभी मेरा मिलना उनसे हो पाता, कभी नहीं। फिर दूसरे दिन की वही कोशिश। याद आता है एक नया बिरवा लगाने और उसे फलित होते देखने के लिए किसी माली को क्या-क्या नहीं करना पड़ता। कितनी-कितनी परेशानी नहीं झेलनी या उठानी पड़ती। शुरू से 'अ' 'ब' प्रारंभ करना कठिन है। न जाने कितने चक्कर लगाये होंगे मैंने वयस्क राजनीतिज्ञों के घरों के, जो भी उस समय प्रभावशाली थे। आपसे सच क्या छिपाना, बताना चाहूंगा कि मुझे ऐसे भी अवसर मिले हैं जब कि कितने ही लोगों ने मुझे पहचानने से इनकार कर दिया। कितनों ने सवाल उठाये, पूछा—राजनीति से आप कहां जुड़े हुए हैं?

उन्हें मैं कैसे बताता-समझाता कि राजनीति के वातावरण में मैं पैदा हुआ, बड़ा हुआ। जुड़ने का प्रश्न पैदा होने के बाद आता है। पैदा होने से पहले नहीं।

बाबूजी से धीरज रखने की जो शिक्षा मुझे मिली, वह मेरे सहारे आती रही। मुझे स्पष्ट मालूम था कि क्या करना या होना है। नौकरी करते, कठिनाइयां सहते, मैंने साहस नहीं छोड़ा। सन् 77 से 80 तक इंतजार करने की कोशिश की। समय बीता 80 से, फिर कहूं—यहीं चप्पल घसीटने की प्रक्रिया जारी हो गयी और आप कह सकते हैं कि जो कुछ उस समय भोगा, किया, उसी का फल है कि आज मैं अपने साधारण-से-साधारण कार्यकर्ता के महत्त्व को, उसकी लगन और निष्ठा को समझता हूं और उनके प्रति मेरे मन में गहरा

मैंने बाबूजी के कामो को निकट से जानने की, समझने की कोशिश
ी है। उस समय तो नही मालूम था कि मैं डॉक्टर नही बनूगा या
न पाऊंगा इसलिए पारखी आखो से वह सब देखता-निहारता रहू।
ही, ऐसा नही था। बस एक अनोखी आतुरता। जानने-समझने की
हती और बलवती इच्छा। जब भी अवसर मिलता मैं बाबूजी के
ाथ जुड जाता। अपनी खोजी बुद्धि के आधार पर घटनाओ के मतलब
नकालने की कोशिश करता। कभी-कभी बाबूजी का व्यवहार समझ
परे हो जाता, तो झुझलाहट आती। बाबूजी मेरी तरह क्यों नहीं
रते सोचते। उनसे नाखुश होता प्रश्न करता। बाबूजी जवाब देते।
जवाब मेरी आखें खोल देते। वे एक ऐसे पहलू से दिये गये उत्तर
ोते जो मेरी समझ से परे होते और मेरी किशोर बुद्धि मात खा
ाती। मेरे सामने एक नया आकाश खुल जाता। एक नया विस्तार!
क नया आयाम!

जब मैं यह सब आपसे बता रहा हू, मुझे वह सुबह याद आती है।
उस दिन छुट्टी थी। बाबूजी हर दिन घर के लॉन में आये लोगो से
मिलते थे। वे प्रधानमत्री थे। मेरे जी मे आया, उनके साथ लोगो को
मिलने, देखने, सुनने का। बस साथ हो लिया। वे मुझे मेरे कामो मे
रोकते, टोकते नही थे, बल्कि अवसर मिलने पर उत्साहित ही करते
थे। समझाते-बताते कभी-कभी मेरे बिना पूछे ही।

लॉन मे उस पल हम दोनो साथ थे। लोग कम थे। हम लोगों को
समय मिला। हम दोनो अकारण ही चहलकदमी करते, बातें करते,
घूमते रहे। मैंने पाया, यह घूमना अकारण नही था। वहा एक जर्मन
महिला फोटोग्राफर आयी, जिन्होने शायद समय लिया था या ले
रखा था, बाबू जी के स्टिल चित्र उतारने का। वे बाबूजी को बहुत
ही नेचुरल परिवेश मे देखना, चित्र उतारना चाहती थी। वे अपने
काम मे, कैमरे को जब-तब क्लिक करने मे लगी थी और हम दोनों
अपने मे मस्त बातें करने चहलकदमी करने मे। काश, उस समय
उनका अता-पता ले रखता तो उनके वे चित्र मेरे कितने काम आते।
पर उस समय इतनी समझ कहा थी!

बाबूजी के साथ घूमता मैं रह-रहकर सचेत हो जाता। देखना
चाहता था कैमरा कहा है? मुझे क्या करना चाहिए? था न किशोर

मन ! उस उत्कंठा से अपने को बचा नहीं पाया था। यह जानने की कोशिश कि मेरा हर कदम भव्य और शालीन हो। जर्मन महिला कभी पास कभी दूर, कभी आगे, कभी पीछे, हर ऐंगिल से कैमरा क्लिक करती रहीं। पचासों तरह से ली होंगी फोटो उन्होंने। हम दोनों बाप-बेटों ने चलते-चलते बातें करते कितनी तरह के पोज बदले होंगे जो सहज ही हो जाते हैं। कभी हम ठिठककर बात कर रहे हैं और मैंने पाया बाबूजी की आंखें कहीं अतीत में खो-सी गयी हैं तो कभी हमारे हाथ बगल में झूलने-लहराने के बजाय आपस में पीछे बंध गये हैं। मैंने बाबूजी की नकल नहीं उतारी पर यह सब अनायास ही होता चला गया है। जैसा मैंने किया है उसी पल बाबूजी के हाथ भी तत्काल उसी जगह चले गये हैं। हम दोनों की एक-सी प्रतिक्रियाएं। काफी लोग आ

मन ! उस उत्कंठा से अपने को बचा नहीं पाया था। यह जानने की कोशिश कि मेरा हर कदम भव्य और शालीन हो। जर्मन महिला कभी पास कभी दूर, कभी आगे, कभी पीछे, हर ऐंगिल से कैमरा क्लिक करती रही। पचासों तरह से ली होंगी फोटो उन्होंने। हम दोनों बाप-बेटों ने चलते-चलते बातें करते कितनी तरह के पोज बदले होंगे जो सहज ही हो जाते हैं। कभी हम ठिठककर बातें कर रहे हैं और मैंने पाया बाबूजी की आंखें कहीं अतीत में खो बंध गयी हैं तो कभी हमारे हाथ बगल में झूलने-लहराने केबजाय आपस में पीछे बंध गये हैं। मैंने बाबूजी की नकल नहीं उतारी पर वह सब अनायास ही होता चला गया है। जैसा मैंने किया है उसी पल बाबूजी के हाथ भी तत्काल उसी जगह चले गये हैं। हम दोनों की एक-सी प्रक्रियाएं। काफी लोग आ गये इस बीच। बाबूजी उनसे बातें करने, उनकी परेशानियां सुनने, उनके जवाब देने में उलझ गये। जर्मन महिला औपचारिकता समाप्त कर चली गयी। मैं बाबूजी के साथ जुड़ा रहा। इसी बीच एक उद्योगपति एव गृहमंत्री गुलजारी लाल नन्दा मिलने आये—यह सूचना लेकर बाबूजी के निजी सचिव सहाय साहब आये।

सहाय साहब की बात सुन बाबूजी ने घड़ी की ओर देखा और कहा—कुछ समय और बाकी है मेरा जनता से मिलने का। वह पूरा हो जाये तब तक के लिए आप उन लोगों को दफ्तर की बैठक में बैठा लें।

सहाय साहब लौट गये।

तनिक देर बाद मैंने गाड़िया जाने की आवाज सुनी और देखा दोनों उद्योगपति और गृहमंत्री अपनी-अपनी गाड़ी में चले जा रहे हैं। यह देख मन में कुछ परेशानी हुई। मैं लपका बाबूजी की तरफ और बताया उनसे—बाबूजी, गृहमंत्री चले गये हैं। वे जो उद्योगपति आये थे वह भी वापस लौट गये हैं आपसे बिना मिले, पता नहीं क्या बात होगी?

बाबूजी ने कहा मैंने उनको कहलवा दिया है कि मुझे अभी कुछ और समय लगेगा इसलिए शायद वे चले गये होंगे।

मैंने आग्रह किया और जिद कर पूछा कि आप उनसे मिले क्यों नहीं?

मेरे सवाल पर बाबूजी ने फिर घड़ी की ओर देखा और बोले—

केवल पांच मिनट बच गये है। इन पांच मिनटों तक और मैं इन लोगो से मिल लूं फिर तुमसे बात करता हूं।

मैं निराश हो एक पेड़ तले जा खड़ा हुआ। वहां बाबूजी का पाच मिनट तक इतजार करता रहा।

पांच मिनट जब पूरा हो गया तब बाबूजी ने मुझे बुलाया और प्यार से पूछा, कहा—क्या आप नाराज हो गये हैं? आओ, हम बताते हैं कि हमने क्यों कहा कि अभी मुझे थोड़ा समय और लगेगा।

मैं अपलक उनकी ओर देख रहा था। वे मुझे ले लॉन मे एक ओर चले और फिर ठिठककर उन्होने इशारा किया एक पेड़ की तरफ। मैंने देखा, एक बूढा वृद्ध व्यक्ति। उसकी ओर इशारा कर बाबूजी पूछ रहे थे—सुनील, तुम उसे जानते हो?

मैं कैसे जानता वह कौन है। मैं बोला—न, मैं तो नही जानता।

उन्होंने बताया—यह पर्वतीय क्षेत्र से आया है। बहुत गरीब परिवार का है। उसकी उम्र काफी हो चुकी है। वह यहां आया है। मालूम नही कितने दिनो से उसके परिवार में खाना बना होगा या नही? इसने जो कुछ पैसा बचाया होगा, उससे बस का टिकट, रेल का टिकट ले सुदूर दिल्ली पहुंचा है अपनी फरियाद लेकर, अपने प्रधानमंत्री को सुनाने।

बात सब हो सकती है। मैंने बाबूजी से सहमति प्रकट की। अभी मैं अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि उन्होंने एक और पेड़ के बीच बैठी महिला की ओर इशारा किया और कहा—इस महिला ने, जो कि दक्षिण भारत के दूर दराज गाव से आयी है, अपने जेवर गिरवी रखे होगे या कि पैसे उधार लिये होगे रेल-भाड़े के लिए और लाख परेशानिया झेल वह यहां तक पहुंची है अपनी दुख भरी कहानी अपने नेता को सुनाने।

मैंने इसे भी मजूर किया और सहमति मे सिर हिलाया। वे बोले—सुनील, तुम्हीं बताओ, मैं इनकी या आने वाले इन जैसों की बात नही सुनता और अपने गृहमत्री से मिलने, इन सबको छोड़, चला जाता जो एक बार नही दस बार मेरे कार्यालय मे आ सकते हैं और वह उद्योगपति, जिनका तुम जिक्र कर रहे हो, एक बार नही बीसियो बार बंबई से उड़कर दिल्ली पहुच सकते हैं प्रधानमत्री से मिलने, पर

हो। सभ्य और सुदृढ़ विचार ही मेरे अपने बनें। पर उस पल जब मैं आकाश में उड़ता पाकिस्तान की ओर जा रहा था, उस समय मेरे मन में कुछ और ही तरह के भाव थे।

हवाई जहाज नीचे उतरा। यह हलवारा का हवाई बेस था। यहा हमें बताया गया कि कैसे हमलावरों ने इस हवाई बेस को ध्वस्त करने की कोशिश की, लेकिन हमारे सैनिकों की चुस्त-दुरुस्ती के कारण वे सफल नहीं हो सके। हमारे जवानों ने इसकी भरपूर हिफाजत की और इसे पूरी खूबसूरती से बचाकर रखा। फल यह हुआ दुश्मन अपने इरादों में नाकामयाब रहा। उसे नजदीक आने में सफलता न मिली गोकि उनकी मार और गोली बारूद के निशान जहा-तहा आसपास की इमारतों पर दिखाई पड़ रहे थे। हमने उन सबको पास से देखा और वारदात का पूरा किस्सा सुना।

वहा से हम लोगो को बा-इज्जत सैनिक सम्मान के साथ ले जाया गया बरकी। यहा पुलिस स्टेशन पर तिरगा लहरा रहा था। इस तिरंगे की शान को बरकरार रखने के लिए हमारे जवानो ने कितनी आहुतिया दी हैं। मेरा मन उस तिरगे को सैल्यूट करता झुका। जाने क्यो मेरे मन मे आया, मैं इस झडे के नीचे पल भर रुक उन जवानों-शहीदों की आत्मा की शाति की प्रार्थना करू जिन्होंने देश की शान और रक्षा के लिए अपने जीवन अर्पण किए हैं।

मैं अभी यह सोच ही रहा था कि हम एक तोप के पास खड़े थे। कई और तोपे आसपास थी। जिनके बारे मे हमें बताया गया कि ये तोपे लाहौर के रेडियो स्टेशन और उस शहर की दूसरी प्रभावशाली जगहो पर पूरी तरह से कट्रोल रखे हुए हैं और आनन-फानन मे आग उगल सकती हैं।

एक नवयुवक के मन की दशा का अंदाज लगाइए। क्या कुछ गुजर रहा था मेरे मन में। 15 साल की उम्र, मुझे तो उस समय यही लग रहा था कि मैं यह देखू, यह जानू कि पाकिस्तान के लोग कैसे रहते थे यहा। उनके घर, हाट, गलियारे और दुकान। पर सब कुछ ध्वस्त और अस्त-व्यस्त पडा था। चीजें बिखरी और कितने ही मकान बद या अधखुले। वह बिखराव, वह बरबादी!

हम और आगे चले। देखा कई पैटन टैंक टूटे पड़े है और उन्हे

चलाने वाले आपाधापी में उन्हें जबरन छोड भाग गये हैं। भारतीय जवानो द्वारा नष्ट, अर्ध-भग्न हालत में पड़े पैटन टैंक !

हम देख ही रहे थे कि भारतीय सेना के वरिष्ठ अधिकारियों ने बाबूजी से आग्रह किया कि वे एक टैंक पर खड़े हो। उन्हे एक पर खड़ा कर फोटो लिये गये। आज भी कहीं-कहीं वह फोटो देखने को मिल जाता है और उसे देख मैं उस क्षण के साथ अपने को जीवित पाता हूं। कैसा अनोखा था बाबूजी का यह कहना—चलिए, हम आपको घुमाने ले चलते हैं।

मैंने बाबूजी को टैंक पर सवार देखा और जब उनकी फोटो खीची जा रही थी तो मैंने पास खड़े मेजर जनरल से पूछा—अकल, क्या मैं टैंक पर नही जा सकता ? मेरे शरीर में अभी भी झुरझुरी आ गयी है। उन हाथो की गर्मी मैं अपने शरीर के हाथो के नीचे, बगल मे महसूस कर रहा हू जहा से उठाकर उन्होने अपने हाथो से मुझे टैंक पर खड़ा कर दिया था।

उन लोगो के मना करने के बाद बाबूजी ने कहा—हम यहा से इच्छुकी कैनाल तक चलेंगे।

इच्छुकी कैनाल एक स्ट्रेटेजिक स्थल है। नहर के इस ओर है भारतीय सेना और दूसरी ओर पाकिस्तानी सेना। आमने-सामने तैनात। सैनिक अधिकारियों की दलील थी कि यह उचित नही होगा कि देश के प्रधानमत्री वहा तक पहुंचें, क्योकि खतरा है।

उत्तर मे कहे गये बाबूजी के शब्द आज भी मेरे कानो मे गूजते हैं। बाबूजी ने कहा था कि एक नही, जाने कितने देश के बहादुर लाल ने अपनी जानें यहाँ कुर्बान कर दी तो क्या ये मैं—मैं सिर्फ अपनी जान की सोचू इस समय ! मैं उनके हौसले बुलद करना चाहता हू। मैं उनकी प्रशसा करने यहा आया हूं।

उनके सामने अधिकारियो का सारा तर्क अर्थहीन था। वे नही माने और चले। मुझे साफ याद है एक नही, दो-चार-छह घेरे एक के बाद एक बनाये गये और उसके बीच बाबूजी धीरे-धीरे इच्छुकी कैनाल की तरफ बढ़े। दोनों बड़े जनरल बाबूजी के अगल-बगल इस तरह उन्हे घेरे चल रहे थे जैसे कोई पहाड़ चल रहा हो। देश के प्रधानमत्री तक कोई, किसी भी तरह की आच नही आ सकती।

हो। स्वस्थ और सुदृढ़ विचार ही मेरे अपने बनें। पर उस पल जब मैं आकाश में उड़ता पाकिस्तान की ओर जा रहा था, उस समय मेरे मन में कुछ और ही तरह के भाव थे।

हवाई जहाज नीचे उतरा। यह हलवारा का हवाई बेस था। यहां हमें बताया गया कि कैसे हमलावरों ने इस हवाई बेस को ध्वस्त करने की कोशिश की, लेकिन हमारे सैनिकों की चुस्त-दुरुस्ती के कारण वे सफल नहीं हो सके। हमारे जवानों ने इसकी भरपूर हिफाजत की और इसे पूरी खूबसूरती से बचाकर रखा। फल यह हुआ दुश्मन अपने इरादों में नाकामयाब रहा। उसे नजदीक आने में सफलता न मिली क्योंकि उनकी मार और गोली बारूद के निशान जहां-तहां आसपास की इमारतों पर दिखाई पड़ रहे थे। हमने उन सबको पास से देखा और वारदात का पूरा किस्सा सुना।

वहां से हम लोगों को बा-इज्जत सैनिक सम्मान के साथ ले जाया गया बरकी। यहां पुलिस स्टेशन पर तिरंगा लहरा रहा था। इस तिरंगे की शान को बरकरार रखने के लिए हमारे जवानों ने कितनी आहुतियां दी हैं। मेरा मन उस तिरंगे को सैल्यूट करना चाहा। जाने क्यों मेरे मन में आया, मैं इस झंडे के नीचे पल भर रुक उन जवानों-शहीदों की आत्मा की शांति की प्रार्थना करूं जिन्होंने देश की शान और रक्षा के लिए अपने जीवन अर्पण किए हैं।

मैं अभी यह सोच ही रहा था कि हम एक तोप के पास खड़े थे। कई और तोपें आसपास थीं। जिनके बारे में हमें बताया गया कि वे तोपें लाहौर के रेडियो स्टेशन और उस शहर की दूसरी प्रभावशाली जगहों पर पूरी तरह से कंट्रोल रखे हुए हैं और आनन-फानन में आग उगल सकती हैं।

एक नवयुवक के मन की दशा का अंदाज लगाइए। क्या कुछ गुजर रहा था मेरे मन में। 15 साल की उम्र, मुझे तो उस समय बड़ा लग रहा था कि मैं यह देखूं, यह जानूं कि पाकिस्तान के लोग कैसे रहते थे यहां। उनके घर, हाट, गलियारे और दुकान। पर सब कुछ ध्वस्त और अस्त-व्यस्त पड़ा था। चीजें बिखरी और जितने ही मकान बंद या अधखुले। वह बिखराव, वह बरबादी।

हम और आगे चले। देखा कई पैटन टैंक टूटे पड़े हैं और उ[illegible]

हो। रवम्य और गुदृढ़ विचार ही मेरे अपने बनें। पर उस पल जब मैं आकाश में उड़ता पाकिस्तान की ओर जा रहा था, उस समय मेरे मन में कुछ और ही तरह के भाव थे।

हवाई जहाज नीचे उतरा। यह हलवारा का हवाई बेस था। यहा हमें बताया गया कि कैसे हमलावरों ने इस हवाई बेस को ध्वस्त करने की कोशिश की, लेकिन हमारे सैनिकों की चुस्त-दुरुस्ती के कारण वे सफल नहीं हो सके। हमारे जवानों ने इसकी भरपूर हिफाजत की और इसे पूरी खूबसूरती से बचाकर रखा। फल यह हुआ दुश्मन अपने इरादों में नाकामयाब रहा। उसे नजदीक आने में सफलता न मिली गोकि उनकी मार और गोली बारूद के निशान जहां-तहा आसपास की इमारतों पर दिखाई पड़ रहे थे। हमने उन सबको पास से देखा और वारदात का पूरा किस्सा सुना।

वहा से हम लोगों को बा-इज्जत सैनिक सम्मान के साथ ले जाया गया बरकी। यहा पुलिस स्टेशन पर तिरंगा लहरा रहा था। इस तिरंगे की शान को बरकरार रखने के लिए हमारे जवानों ने कितनी आहुतिया दी हैं। मेरा मन उस तिरंगे को सैल्यूट करता झुका। जाने क्यों मेरे मन में आया, मैं इस झंडे के नीचे पल भर रुक उन जवानों-शहीदों की आत्मा की शांति की प्रार्थना करूं जिन्होंने देश की शान

बातें करते हुए हम मिलिट्री अस्पताल मे आये जहा पड़े भारतीय जवानों ने असली सेवाएं पूर्ण रूप से देश को अर्पित की हैं। यहां एक खाट के पास जा बाबूजी उनका हाथ अपने एक हाथ में लेते तथा अपना दूसरा हाथ उनके माथे पर रख उन्हे सात्वना देते बातचीत करते, हालचाल पूछते।

काफी देर घूमने के बाद हम एक जगह पहुचे जो जालियों से, नेट से ढका था। अन्दर एक आफिसर उसमें लेटा था। बाबूजी के पहुचते ही डॉक्टरों ने जाली हटाई और जहां तक मेरी याद है परिचय मे बताया गया—मेजर भूपेंदर सिंह हैं।

मेजर भूपेंदर सिंह का सारा शरीर क्षत-विक्षत हुआ था। बुरी तरह से शेल उनके शरीर को बीध गये थे। और वे चिथड़े-चिथड़े हुए पड़े थे। उनके पास आ बाबूजी ने उसी प्यार से, स्नेह से उनका हाथ एक हाथ मे ले, दूसरे से उनका माथा छुआ। माथे पर उनका हाथ आते ही मेजर की आंखों मे आंसू भर आये।

मैं इस दृश्य को देख नही पा रहा था, क्योंकि बुरी तरह से घायल थे मेजर।

मेजर साहब की आखों में आसू देख बाबूजी ने प्रश्न किया और जानना चाहा—आप तो भारतीय सेना के मेजर हैं, उस भारतीय सेना के जिसका नाम और रुतबा विश्व में है, जिसे उच्चतम सैनिक ताकतों में गिना जाता है। आपकी आंखो मे आसू देख मुझे कष्ट हो रहा है।

इसके उत्तर में जिस तरह का जवाब मेजर ने दिया, वह शायद ठीक उन्ही शब्दो मे मैं उसे आपके लिए न दोहरा पाऊ पर उसका आशय कुछ इस तरह था—सर, मैं भारतीय सेना का मेजर हू, उस भारतीय सेना का जिसका विश्व में उच्चतम स्थान है। मेरी आखो मे आसू इसलिए नहीं है कि मौत मेरे नजदीक है या कि मैं कुछ दिनों का [illegible] । मेजर [illegible] योग्य [illegible] [illegible] ेवन मे पहली बार उनकी आखों में आंसू देखे। मैं अब और नही सह सकता था। उन दोनों को वही छोड़कर मैं वहा से अलग हट गया।

अब यह मेरा बचपन कहिए या कुछ और उधर बाबूजी जवानों को संबोधित कर उनकी बहादुरी और वफादारी, दिलेरी की प्रशंसा कर रहे थे और मैं जिद कि मैं यहा आ बिना कैनाल का पानी पिए जाऊंगा ही नहीं।

मुझे मना किया गया, पर वह मेरा किशोर बालपन का हठ ही तो था। आखिरकार एक मेजर मुझे अपने साथ ले कैनाल तक चले। हम किनारे अभी पहुचे-पहुचे ही थे कि जो कुछ घटा, वह सारा एक ऐसी अनहोनी थी जो देखे गये स्वप्न की तरह मेरे मानस-पटल पर आज भी अंकित है और शायद जीवन के अंतिम पल तक वैसे ही जीवंत रहेगा। मैं पानी के नजदीक पहुंचा ही था और जल को हाथ लगाने वाला था कि दूसरे किनारे से कितने ही पाकिस्तानी जवान खड़े हो गये। मैं नहीं जानता था कि वे बंकर में हैं और इस फुर्ती से वह सब होगा और मेरे पानी छूते ही वह मेजर अकल मुझे गोद में ले वापस हवा से कहीं अधिक फुर्ती से भागे क्योंकि दूसरी ओर से गोलियां चलने ही वाली थी और बस वह मेजर अंकल का कमाल था कि वे मुझे ऊपर ले आये। आज भी वह पलायन, मेरे मानस-पटल पर भय के साथ चिपककर रह गया है।

बाबूजी का वहां का दौरा पूरा हो गया था। दिल्ली लौटने पर हम अस्पताल की तरफ, जहां हमारे घायल जवानों की देखभाल, दवा-दारू की जा रही थी, जाने लगे तो बाबूजी ने हमसे कहा—सुनील, वैसे तो हमारे जवान अपने देश की रक्षा करते हैं, पर यह लड़ाई दो सरकारों में है—दो लोगों में नहीं।

स्पष्ट था उनका इशारा भारतीय और पाकिस्तानी अवाम की तरफ था। उन्होंने आगे कहा—इसलिए मैंने अपने भारतीय जवानों को कह रखा है कि जहां तक संभव हो, जनता को इससे कम-से-कम कठिनाई हो।

मेरी तरह आप भी स्वीकार करेंगे कि शास्त्री जी में मानवतावादी भावनाएं कूट-कूट कर भरी थी। उनके शब्द उनके मन की अथक गहराई से पूरी सच्चाई और पूरी ईमानदारी से निकल रहे थे। जो वे कह रहे थे, उसमें राजनीतिकता रंचमात्र नहीं थी बल्कि वे जो महसूस कर रहे थे, वही उनकी जबान पर उस पल था।

बातें करते हुए हम मिलिट्री अस्पताल में आये जहा पड़े भारतीय जवानों ने असली सेवाएं पूर्ण रूप से देश को अर्पित की हैं। यहाँ एक खाट के पास जा बाबूजी उनका हाथ अपने एक हाथ में लेते तथा अपना दूसरा हाथ उनके माथे पर रख उन्हे सांत्वना देते बातचीत करते, हालचाल पूछते।

काफी देर घूमने के बाद हम एक जगह पहुचे जो जालियों से, नेट से ढंका था। अन्दर एक आफिसर उसमे लेटा था। बाबूजी के पहुंचते ही डॉक्टरो ने जाली हटाई और जहा तक मेरी याद है परिचय मे बताया गया—मेजर भूपेंदर सिह हैं।

मेजर भूपेंदर सिह का सारा शरीर क्षत-विक्षत हुआ था। बुरी तरह से शैल उनके शरीर को बीध गये थे। और वे चिथड़े-चिथड़े हुए पड़े थे। उनके पास आ बाबूजी ने उसी प्यार से, स्नेह से उनका हाथ एक हाथ में ले, दूसरे से उनका माथा छुआ। माथे पर उनका हाथ आते ही मेजर की आखो मे आसू भर आये।

मैं इस दृश्य को देख नहीं पा रहा था, क्योंकि बुरी तरह से घायल थे मेजर।

मेजर साहब की आखों मे आसू देख बाबूजी ने प्रश्न किया और जानना चाहा—आप तो भारतीय सेना के मेजर हैं, उस भारतीय सेना के जिसका नाम और रुतबा विश्व मे है, जिसे उच्चतम सैनिक ताकतों में गिना जाता है। आपकी आखो में आसू देख मुझे कष्ट हो रहा है।

इसके उत्तर मे जिस तरह का जवाब मेजर ने दिया, वह शायद ठीक उन्ही शब्दो में मैं उसे आपके लिए न दोहरा पाऊ पर उसका आशय कुछ इस तरह था—सर, मैं भारतीय सेना का मेजर हू, उस भारतीय सेना का जिसका विश्व में उच्चतम स्थान है। मेरी आखो मे आसू इसलिए नहीं है कि मौत मेरे नजदीक है या कि मैं कुछ दिनो का मेहमान हूं। आसू मेरे इसलिए आ गये हैं कि भारतीय सेना का मेजर होते हुए भी आज मेरे प्रधानमंत्री मेरे सामने खड़े हैं पर मैं इस योग्य नही कि खड़े होकर उन्हें सैल्यूट कर सकू।

उस पल बाबूजी की भी आँखें भर आयी थी और मैंने जीवन में पहली बार उनकी आखों मे आंसू देखे। मैं अब और नही सह सकता था। उन दोनों को वही छोड़कर मैं वहा से अलग हट गया।

कहीं और जा आने को छिपाने की जगह नहीं थी। बस प
पड़ी गाड़ी दिखी। मैं उसमें जा बैठ गया और सोचने लगा, मैं
करूं ?

तन-बदन में आग-सी लगी थी। मैंने पंखा खोल लिया था
घायल मेजर को देख, उनकी और बाबूजी की आंखों में आंसू
मेरी आंखों तले युद्ध के जाने-माने कितने दृश्य घूमने लगे थे।

थोड़ी देर बाद बाबूजी मेरे पास आये। आते ही उन्होंने पूछा
तुम चले क्यों आये ?

क्या जवाब देता! मेरे लिए बताने को क्या रह गया था! मु
बहुत तकलीफ हो रही है। बाबूजी ने मेरी मन स्थिति भाप ली थी

बाबूजी आगे बढ़े। पंखा बंद करते बोले—अरे, यह पंखा किसने
चलाया ?

मेरा उत्तर था—मैंने !

वे बोले—तुमने देखा नहीं कि एक भी जवान के पास यहां पंखा नहीं है। वे सब इस असह्य गर्मी में कैसे कष्ट से लेटे हुए हैं और तुम्हें फिर भी पंखा चलाने की बात मन में आयी ?

मेरी हिम्मत ही नहीं पड़ी कि बाबूजी की तरफ मुंह उठाकर देखूं। मैं उनकी आंखों से परिचित हूं। मैं जानता हूं वे किस आशा और अभिलाषा से मेरी ओर देख रहे होंगे।

आज मुझे उनका वह उस तरह से देखना, आंखों से बातें करना किस कदर याद आता है।

आज होली है।

पिछली दो होली पर अम्मा मेरे साथ रहीं। वैसे रहती वे दिल्ली में हैं, पर त्यौहार पर कभी-कभार मेरे पास आ जाती हैं। अम्मा के होने से मेरा सूनापन कम हो गया है। बाबूजी की कमी, कम खली है। फिर भी वे आज बराबर याद आते रहे हैं।

मैं चुप बैठा हूं। मेजर भूपेंदर सिंह याद आते हैं। कभी होली पर ऐसी गर्मी लखनऊ में नहीं पड़ती, पर इस आज के दिन है और मीरा पंखा चला गयी है। मैंने उठ खड़े हो, पंखा बन्द कर दिया है।

तब तक मीरा फिर आयी हैं कहते हू

फिर पखा बंद कर दिया, और उन्होने फिर पखा चला दिया ।

मेरे मन में भूपेंदर सिंह को याद ताजा हो आई है। मैं बरबस चाहते हुए कि पखा न चले, मैं उठकर उसे बद नहो कर सका । आज के दिन मन का बोझ मैं मीरा के ऊपर नहीं डालना चाहता । चुप अपलक मीरा को जाते देख रहा हू । मीरा चली गयी हैं। उस दूसरे कमरे में मीरा बच्चो के साथ उलझी हैं और उनकी आवाज रह-रहकर मुझ तक आ रही है ।

हम लखनऊ मे हैं।

लखनऊ में होने के साथ कितनी और बातें मुझे अपने आपमे लपेट रही हैं। यहा मेरा घर था। उस समय बाबूजी पुलिसमत्री थे। वह घर उस जगह था जहा आज विधान सभा सनेक्जी की इमारत बनी है और ऊर्जा मत्री के रूप में उस इमारत मे मेरा कार्यालय है।

भागते हुए समझने की गाथा भी अजीब है। कैसे-कैसे पल उन स्मृतियों के साथ जुडे हैं। वह जगह जहा सप्रेक्सी मे मेरा आफिस है वहां बाबूजी के मकान का बमामदा था और उसमे हम खेला करते थे।

याद

करत

जब वे आये तो उनकी धोती पकड़कर खडा हो गया और फिर जाने किस तरह उन्हें ऊपर की मंजिल पर बरामदे में ले गया और वहा से अंगुली उठा उस तरफ इशारा किया जहा फाटक पर सतरी खडा था।

अम्मा कहती हैं—हम लोगो ने इसका मतलब निकाला कि आप देर से आयेंगे तो आपको उस पुलिस से पकडवा दूगा ।

अम्मा आगे कहती हैं कि इस बात का जिक्र बाबूजी ने कही अपने सहयोगियों से कर दिया होगा—अनायास ही और अखबार वाले उसे ले उडे ।

एक दिन एक अखबार में इस शीर्षक से समाचार छपा—पुलिसमत्री को पुलिस से पकडवाने को बेटे द्वारा धमकी।

जाने कैसे पुलिस सिपाही और सैनिक मेरे मन मे गड्डमड्ड हो उठे हैं

और मेरे बच्चों की आवाजें मुझे अपने अतीत में खींच लायी हैं और फिर मीरा किसी काम से आई है और टोक बैठी है—क्या गुमसुम से अकेले बैठे हंस रहे हैं। मैं चाह कर भी उन्हें कुछ नहीं कह पाता। वे अपने आपसे कुछ कहतीं बाहर चली जाती हैं।

मैं चुप उनका जाना देखते बैठा रह जाता हूं।

एक तरफ से विभोर खेलता-कूदता आया है और उसके हाथ और मुंह में गुझिया भरी है। उसने मेरे मुंह में भी गुझिया ठूंस दी है। खिलंदड़ा लड़का। मैं उसे इनकार नहीं कर सका हूं।

गुझिया मुझे भी पसंद है।

पिछले साल और इस साल दोनों ही साल ढेरों गुझियां, ढेरों मठरियां, नमकीन और पकवान अम्मा ने अपनी अस्वस्थता के बावजूद बनाये हैं।

मैं पिछले दिनों अधिकांश दौरे पर रहा हूं। लौटते ही अम्मा ने बताया कि जैसे ही मैं गुझिया बनाने बैठी तो विभोर आ सामने खड़ा हो गया और कहने लगा—आज से हम कुछ और नहीं खायेंगे, बस गुझिया ही खाते रहेंगे।

अवसर पा मैंने विभोर को पकड़ा, पूछा। वह बोला—दादी अम्मा बनाती हैं इतना अच्छा पकवान कि कुछ और खाने का मन ही नहीं करता। मुझे तो बस गुझिया ही पसंद है। वही अच्छी लगती है। वही खायेंगे।

मैं उसके चेहरे, उसके बाल स्वभाव, उसके हाव-भाव में अपनी झलक चमकते देखता शरमा जाता हूं। इससे कम स्वच्छंदतास मैं नहीं

उमे दौड़-भागता देख मैं भी अपने मन के आंगन मे भटकता उस ठौर तक चला आया हू जब एक ऐसे ही समय मे मैं बाबूजी के साथ था। वैसे बाबूजी के साथ कितनी ही होलियो की याद ताजा है, जब देश के कितने ही नेता और जाने-माने लोग मेरे घर आते थे और उस समय हफ्तों पहले से ही घर में होली के पकवान बनते थे।

कितना अच्छा लगता है रग-गुलाल से लोगो का चेहरा भरना। गीली होली मुझे कम पसद है। घर आये लोगो को मैंने भी अबीर-गुलाल से भर दिया है। जवाब मे उन लोगों ने भी मेरा मुह रगा है। मिलने वालो मे, आये लोगो में हमारे कुछ चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी भी हैं। आकर उन्होंने गुलाल नही लगाया, शायद कही उन्होने अपने को कम-जोर पाया इसलिए झुककर केवल आशीर्वाद मागा। मैंने झुकते-झुकते उन्हें उठाकर उनके मुह पर गुलाल मलते हुए कहा—आज गले मिला जाता है, भई! और उनके सामने गुलाल की तश्तरी बढा दी। जवाब मे उन्होंने भी मेरे मुंह पर गुलाल मला और मैं उनसे गले भी मिला।

इस तरह मेरे साथ गले मिलने की कल्पना शायद उन्होंने नही की थी। मुझे अपना सुख हर छोटे-बड़े के साथ बाटने मे जो आनंद मिलता है, उसे क्या कागज पर उतारा जा सकता है। उस सुख के बीज, जब मैं 12-13 साल का था, तभी मेरे मन के आगन मे लगा दिये गये थे। बाबूजी गृहमंत्री थे। घर पर मोटरो का ताता। दोपहर होते-होते सारा लॉन गुलाल से भर उठा था।

मेरी तो बात ही मत पूछिए कि इसी बीच बाबूजी ने मुझे बुलाकर कहा—ये वंवडदास, उधर वहा गेट के पास देखना कौन खडा है। जाओ, उसे बुला लाओ।

भागा हुआ मैं गेट तक गया। पाया, अरे यह तो अपना कछी का पिता है! उसे बुला मैं बाबूजी के पास ले आया। उसकी मुट्ठिया बद थी और उसने अपने दोनो हाथ पीछे छिपा रखे थे।

... आ उसने हाथ उनके पैरो तक ले जाकर मुट्ठिया ... भरा था।

...—वह गुलाल अर्पित करना चाहता ...उठा गले से लगा लिया यह कहते ...ौर भई, गुलाल मुंह पर लगाया

जाता है, पैरों पर नहीं।

तब मेरे बाबूजी ने मस्ती से गुलाल उठाया और उनके चेहरे पर मल डाला। जवाब में उन्होंने भी बाबूजी के चेहरे पर गुलाल लगादे।

बाद में उनके चले जाने पर बाबूजी ने कहा था—अगर मेरा बस चले तो मैं सारे साल होली मनाता रहूं।

मैं चकित उनकी ओर देखता रह गया था। और बाबूजी ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए बताया कि होली बराबरी का त्योहार है। समाज में यह जबरन जो ऊंच-नीच की दी गयी है, होली इसे समाप्त करती है। आज के दिन कोई भी छोटा-बड़ा नहीं रह जाता। काश, ऐसा एक दिन न होकर हमारे जीवन में हमेशा के लिए हो जाये, तो कितना अच्छा रहे।

अपने देश में इस बात की कल्पना भी आ सकती है, क्या मेरी कोशिशों से यह संभव हो सकता है? यह सवाल कितने अरसे से तंग करता रहा है। हम बहुत बड़ी अच्छाई का काम एकबारगी नहीं कर सकते, लेकिन प्रतिदिन जरा-जरा अच्छा काम करते रहने से वह एकत्र होकर बड़े अच्छे काम में परिवर्तित हो जाता है।

मैं कुछ अच्छा कर सकूं, इस बात की प्रतिज्ञा लेकर मैं बाबूजी की समाधि से चला था अपना नामांकन पत्र दाखिल करने गोरखपुर में। यह सारा कुछ इतनी शीघ्रता से हुआ कि मैं खुलकर मीरा से इसके बारे में बात भी नहीं कर सका था। मैंने मान लिया था कि जो कुछ मैं कर रहा हूं उसमें हम दोनों की भलाई है और मीरा की पूर्ण स्वीकृति। अब जबकि हम दिल्ली से चल पड़े थे और मेरे सामने नया जीवन, उसकी चुनौतियां प्रश्नचिह्न बनकर आ खड़ी हुई थीं और मैंने गाड़ी चलाते-चलाते मीरा से पूछा—तुम्हें अच्छा लग रहा है?

गाड़ी की खिड़कियां खुली थीं। मीरा को नींद आ रही थी। अचानक मेरे किये गये इस सवाल से मुझे लगा, वह एक बार चौकन्नी हो उठी है। उसकी प्रतिक्रिया ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया—क्या मैंने कुछ गलत कह दिया था कि मेरे प्रश्न का अवसर गलत था!

कुछ न बोलते पा, मैंने फिर से बात दोहराई—सच-सच

बताओ, मीरा ! तुम्हें कैसा लग रहा है ? तुम्हारा पति अब राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए चुनाव लड़ने जा रहा है। एक नयी तरह के जीवन की ओर बढ रहा है।

मैं जानता था, मीरा अगर और देर तक चुप रही तो मैं अपने को रोक नही सकूगा, बस बोलता ही जाऊगा और मेरी बात लंबी होती चली जायेगी। बोलने की इस तरह की आदत जाने कब से मेरे कठ मे बस गयी है। मैंने स्टेयरिंग सभालते हुए मीरा की ओर देखा और उसे चुप पा आगे कुछ कहने ही वाला था कि उसने अपना हाथ बढा अपनी तर्जनी मेरे होंठों पर रख दी और उसने केवल इतना ही कहा—आप जिस भी रास्ते पर चलेंगे, मैं आपके साथ ही चलूगी, लेकिन इतना मैं जरूर कहूंगी कि वैसे मैंने कभी भी बाबूजी को नही देखा। वे हमारी शादी से बहुत पहले हमसे विदा हो चुके थे। आप से और घर के सभी लोगों से जो कुछ मैंने उनके बारे मे सुना है, उस सब को ध्यान मे रखते हुए आप इस बात की कोशिश जरूर करेंगे हमेशा कि बाबूजी के नाम पर कोई अंगुली न उठाए।

मैं मीरा की तरफ देखता रह गया। समझ में नही आया कि उसे किस तरह समझाऊं कि जिस रफ्तार से समय चल-बदल रहा है, उन बदली हुई परिस्थितियों मे और बाबूजी के जमाने में कितना अतर आ चुका है। आज की राजनीति वह राजनीति नही रही जो बाबूजी के समय थी। फिर भी मैंने मीरा की हथेली अपने हाथ मे ले गाडी चलाते-चलाते मीरा से वादा किया और जिस बात को मैं आजीवन कभी किसी के सामने नही खोलना चाहता था, मजबूरन वह सब मीरा को बता गया।

मैंने कहा—तुम विश्वास नही मानोगी, जब हम दिल्ली से चले और बाबूजी की समाधि पर गये, तुम बगल में थी और मैंने बाबूजी से आशीर्वाद मागा। उसके साथ-साथ वहा खडे होकर मैंने एक प्रतिज्ञा ली, सकल्प किया—आपके आशीर्वाद से मैं राजनीति मे प्रवेश करने जा रहा हू, यदि मैंने अपने कामो से आपके नाम के साथ अपने को न जोड सका, उसे ऊचा नही उठा सका, यदि मेरी वजह से आपके लिए कोई बदनामी की बात आयी, तो मैं अपने आपको आपके पुत्र कहलाने लायक नही समझूगा।

…लालबहादुर शास्त्री, मेरे बाबूजी

मेरे विचार इस तरह गड्डमड्ड हो रहे थे उस पल कि मैं अ…
स्पष्ट नहीं कर पा रहा था।

मीरा ने अपने को थामे मन को हल्का करते घड़ी की ओर नि…
हारी—वह गाड़ी एक घंटा लेट थी।

लखनऊ अभी भी दूर था।

मीरा पर भी मेरे प्रति मोह उमड़ उठा था। उसने बातें करते-करते
पूरी शालीनता के साथ पुन: अपनी हथेली मेरी हथेली पर रखी और
दबाकर दबाते हुए कहा—मैं आपको अच्छी तरह से जानती हूं पर फिर
भी मैं जानना चाहती थी कि मैं आपने अपने इस नये जीवन की
शुरुआत के पूर्व क्या-क्या सोचा ?

मैंने आगे जोड़ा—मुझे पूरा विश्वास है और था कि मैं जहां भी,
जैसे भी रहूंगा तुम सहर्ष, सर्वदा मेरा साथ दोगी, कैसी भी कठिनाई हो
मेरे साथ, उसका सामना करोगी। यह सब जानते हुए मैंने फिर भी
तुमसे पूछा कि तुम्हें कैसा लग रहा है—यह केवल औपचारिकता नहीं,
बस मन बांटकर जीने की बात है।

मैं जानता हूं मीरा ने आज तक एक ऐसी ही जिन्दगी देखी है जो
राजनीति से कोसों दूर की है। उसके पिता सुबह आफिस जाते और
शाम को घर वापस। मैं भी जब बैंक की नौकरी में था, तो मेरा
…ी बंधा-बंधाया जीवन था। सुबह जाना शाम को वापस आ जाना।
…ी-कभी दोपहर को खाने के लिए भी घर आ जाता था।
… पर अब जिंदगी कैसी बंट गयी है। सारी आदत के बदल जाने के बाद
… भी शाम को वापस न लौट पाने की मेरी कमी उसे खलती

…स दिन गाड़ी में बातें करते मैं यह भूल गया था कि मीरा ने
…जी को स्वसुर के रूप में चाहे न देखा हो, पर उसने हमेशा ही
…े रूप में पाया है। उसने अपने आपको उनकी बहू की श्रेणी में
…र उसी के अनुरूप गरिमा के साथ व्यवहार भी किया। बातें
…े उसने अपने बचपन का जिक्र किया और कहा—जानते हैं,
… छोटी थी और बाबूजी प्रधानमंत्री थे और जयपुर आये थे।
…ागमन की बात सुनी और उन्हें देखने की इच्छा मन में
… किसी को बताये मैं उस जगह गयी जहां से वे गुजरने

वाले थे। जाने क्यों उस समय ऐसा लगा था कि वे अपने ही हैं। वे सामने से निकले, मैं खड़ी थी। गाड़ी उनकी पास आयी, मैंने हाथ हिलाया। लगा उन्होंने भी मेरी ओर देख प्रति-उत्तर में हाथ हिलाया। मुझे तब स्पष्ट लगा था जैसे उन्होंने मेरे अभिवादन का जवाब दिया है।

हमारा विवाह 1973 में हुआ पर यह घटना मुझे गाड़ी में चलते मीरा 1980 में बता रही थी। जैसे वह सब कुछ कहने का मौका अभी आया हो। सात साल तक उसने आवश्यक नहीं समझा कि वह अपने श्वसुर की उपस्थिति मुझसे बांटकर जी सके। हमने कितनी ही तरह की बातें की होंगी उन सात सालों में पर आज गाड़ी में चलते नये जीवन के आरंभ में उसका यह कहना—लगा, वह मेरे निर्णय से खुश है।

चुनाव हुआ, परिणाम आये और हमारा जीवन एक नये धरातल पर चलने लगा। मेरी भागदौड़ और जन-जीवन के जुड़ने से एक ही बात उसे परेशान करती है और वह कहती है, आप दौरे का चाहे जैसा भी कार्यक्रम बनाइए, जहां चाहे वहां जाइए, पर शाम को लौटकर घर जरूर आ जाइए। जब आप चार-पांच दिनों तक लगातार बाहर रहते हैं तो घर का वातावरण काटने-काटने को हो जाता है। घर के माहौल में कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

कैसे बताऊं मेरे लिए बंधा-बंधाया जीवन संभव अब नहीं रह गया है। कई बार चाहते हुए भी पूरी कोशिश के बाद भी कई-कई शामें घर से बाहर रह जाना पड़ता है।

मैं इस कथा से पूरी तरह परिचित ही, नहीं भुक्त-भोगी हूं। हम लोगों को बाबूजी से एक पिता का प्यार, जैसा चाहिए, वह नहीं मिल पाया। बाबूजी से मैं गुस्सा होता था। शिकायत करता था और आज जब मैं खुद कई-कई दिनों बाद घर आता हूं और सोये पड़े अपने बच्चों को देखता हूं तो मेरे मन में सवाल उठता है—क्या ये भी मेरे बारे में उसी तरह नहीं सोचते होंगे, जैसे मैं अपने बाबूजी के बारे में सोचता

हो हाट-बाजार का कोई काम हम भाई-बहनों से कभी नहीं थी,
उनका बनाने, समझाने और काम करने का तरीका ही दूसरा था। वे
तो उपासना, न दबाव और गुस्से से करते थे। इसमें यह धीरज है
ही नहीं तो बाबूजी में था। बहुत कोशिश करके भी उस तरह का धीरज
अपने में पैदा ही नहीं कर पाया आज तक।

बात उस समय की है, जब मुझे टिकट मिल गया और बैंक की नौकरी से इस्तीफा देने की बात आयी। इस वक्त जिस तरह से, जिस ढंग की परिस्थितियों से दो-चार होना पड़ा, उसमें बाबूजी का वह धीरज ही काम आया। अगर वह सहारे न आता तो जाने कितनी ही लड़ाइयों में मात से बैठता। बैंक की नौकरी करते कितनी ही तरह के अवाजें-तवाजें सुनने को मिलते ही रहे हैं। लोगों को यह अंदाज ही नहीं था कि यह साधारण-सा व्यक्ति कभी टिकट पा, चुनाव भी लड़ सकता है। पर मेरी धीरे-धीरे यह मान्यता बन गयी थी कि आपके हमारे जीवन में जो भी बातें अवतरित होती या घटती हैं उनके गहरे अर्थ होते हैं।

काश, मुझे बैंक की नौकरी न मिली होती, तो मैं उन सारे अनुभवों से वंचित रह गया होता, जो एक आम व्यक्ति के जीवन में व्याप्त होते हैं। अनुभव प्रेरणा के मूल हैं जो जीवन को भविष्य में ज्यादा प्रखर, ज्यादा रंगीन, ज्यादा मधुमय बनाते हैं।

हो डांट-फटकार कर कोई बात हम भाई-बहनों में कभी नहीं की, उ[illegible]
तो [illegible]
ही [illegible]
अपने में पैदा ही नहीं कर पाया आज तक।

बात उस समय की है जब मुझे टिकट मिल गया और बैंक की नौकरी से इस्तीफा देने की बात आयी। इस पल जिस तरह से, जिस ढंग की परिस्थितियों से दो-चार होना पड़ा, उसमें बाबूजी का वह धीरज ही काम आया। अगर वह सहारे न आता तो जाने कितनी ही लड़ाइयां मैं मोल ले बैठता। बैंक की नौकरी करते कितनी ही तरह के अवाजे-तवाजे सुनने को मिलते ही रहे हैं। लोगों को यह अंदाज ही नहीं था कि यह साधारण-सा व्यक्ति कभी टिकट पा, चुनाव भी लड़ सकता है। पर मेरी धीरे-धीरे यह मान्यता बन गयी थी कि आपके हमारे जीवन में जो भी बातें अवतरित होती या घटती हैं उनके गहरे अर्थ होते हैं।

काश, मुझे बैंक की नौकरी न मिली होती, तो मैं उन सारे अनुभवों से वंचित रह गया होता, जो एक औसत व्यक्ति के जीवन में व्याप्त होते हैं। अनुभव प्रेरणा के मूल हैं जो जीवन को भविष्य में ज्यादा प्रखर, ज्यादा रंगीन, ज्यादा मधुमय बनाते हैं।

मैंने छोटा-सा इस्तीफे का पत्र लिखा और कार्यालय में जा अपने वरिष्ठतम अधिकारी को सौंपा। मैं उनके कमरे में था। पाया, वे भी रे साथ-साथ मेरी ही तरह काफी भावुक हो उठे हैं। मुझे लगा भावुकता का भी जीवन में काफी महत्त्व है। भावुकता तथा निष्ठा से लोगों ने देश की आजादी के आंदोलन में भाग लिया और सैनिक भावना से ही लड़ते रहे।

वरिष्ठ अधिकारी भावुक हो अपनी कुर्सी से उठे और चलकर मेरे कट आये। ऐसा उन्होंने मेरे सामने कभी नहीं किया था। उनके साथ छली कितनी ही मुलाकातों की याद ताजा है जब वे अफसर थे और साधारण अधिकारी बैंक का। मैं उनके इस व्यवहार-परिवर्तन की शा नहीं करता था। उन्होंने स्नेह भरा आशीर्वाद दिया और ना की कि मैं सफलता की ओर बढ़ू। उनके मन में बाबूजी के प्रति

श्रद्धा थी और वे कह रहे थे कि शास्त्री जी के छोड़े अधूरे कामों ‹
सुनील, तुम्हे ही पूरा करना होगा !

वापस जब मैं अपने साथियो के बीच पहुचा तो उन्हें मेरे उठ
कदम का आभास मिल गया था। जहा आप काम करते हैं, दिन
एक लंबे हिस्से मे जब लोगो के साथ उठते-बैठते हैं, उन सब के बी
कितनी ही अलग-अलग तरह की बातें होती-घटती हैं। कोई आपके ब
पास होता है तो कोई आप से काफी दूर। कुछ लोगों को मेरे राजनीति
जीवन मे प्रवेश करने पर हर्ष हो रहा था कि उनके बीच का अपन
कोई आगे जा रहा है और वे कभी कह सकेंगे कि भाई, ये तो हमा
अपने ही हैं। किन्हीं औरो को दुख भी था कि हमारा आपका रास्त
अलग ... । है, अब आप से हम बिछुड़ रहे हैं। तरह-तरह की

पुकारने लगे थे। उन्होंने जरूर मुझमें बंबड़पना देखा होगा। तभी डॉक्टर का ख्वाब ले चला पंछी, सेवा-कार्य, राजनीतिक नेतृत्व न कर पा बैंक की अफसरी संभालने चल पड़ा। बस, कितना अपना 'आपा' और कितना भाग्य का कहा जाये? यही कह कर मन को मार लूगा कि भाग्य ने मुझे बंबड़दास बना दिया और उस बबड़दास ने वहा भी अपने ढग का बबड़दासी रास्ता खोज निकाला। इस सब में अपनी कम, बाबूजी की बात, उनकी सीख ज्यादा थी। वे कहा करते थे, जब भी जहा भी मौका मिले हमे सेवा का अवसर निकाल लेना चाहिए। केवल राजनीति के द्वारा ही सेवा का अवसर नही मिलता। सेवा करने के अपने तौर-तरीके हैं जिनके द्वारा जन-सेवा का कार्य किया जा सकता है।

इस पर मै बाबूजी से कहा करता कि बड़े होने पर मैं एक दिन डॉक्टर बनकर दिखाऊगा सेवा-कार्य किसे कहते हैं। पता नही क्यो किस तरह मन मे यह भावना घर कर गयी थी। बहुत चेष्टा के बाद भी याद नही आता क्यो और कैसे यह बात मन मे आयी कि मुझे डॉक्टर बनकर सेवा करनी चाहिए। उस समय डॉक्टर और राजनीति के पेशे मे कितना अतर, क्या फर्क है, वह सब क्या मै जानता था? शायद नही। अमीर-गरीब क्या होते है, उसकी तमीज भी तो मन मे नही आयी थी। बस एक अनवरत उत्कठा थी—हम किसी के काम आ सकें। किसी का दु:ख बाट उसे हल्का कर सकें। बीमारी दु:ख है! कष्ट है! कष्ट मे मुक्ति! कभी बचपन मे सिद्धार्थ की कहानी पढ़ी थी। यह नही सकता सही तरह से कि वह मेरे आदर्श थे। आज जब पीछे सोचता हू तो पाता हू शायद वही रहे होगे। नही तो इस तरह की भावना के बीज यहा से मिले। जब आख खोली तो घर में सब-कुछ था। गरीबी! निर्धनता! वह सब मात्र किस्सागोई थी। वे बातें कि अम्मा बाबूजी के जेल चले जाने पर किस तरह गृहस्थी चलाती! मेरे बड़े भाई-बहनो का पेट भरती! इन सारी बातो से मेरा सीधा कोई सम्पर्क नही स्थापित हुआ था। इतना जरूर हुआ था कि समय-समय बाबूजी आख मे अगुली डालकर यथार्थ से परिचय कराने की जरूरत कोशिश करते थे। उन घटनाओं का जिक्र मै पहले कर चुका हू। इसलिए यह मानता हू कि यह मेरा [illegible] स्वभाव था जो डॉक्टरी का लगाव। पेशा का

सकते, पर एक ग्लैमर था, जो मुझे खींचता था—गाव की ओर, गरीबों की ओर। और जब वास्तव में गाव पहुचा तब सामने आया यथार्थ का कड़ुवा सच।

उस समय बचपन में तो यही लगता था कि गाव होगा। वहा होगी मेरी बड़ी-सी डिस्पेंसरी। हमारे देश के अधिकाश लोगो को कहां मिलती है चिकित्सा की सुविधा। मैं बाबूजी से कहता कि मैं अवसर मिला तो नर्सिंग होम बनाऊगा। वह किसी अति पिछड़े इलाके मे होगी। लोगों को मेरे कामों से राहत मिलेगी।

इस तरह की बातें मैं बाबूजी से करता और पाता कि उनकी आखो मे अनोखी चमक जागती है। उस चमक मे एक खुशी झलकती है। आज मैं उन आखों को याद कर उनके भावो को पढने की, पकड़ने की कोशिश करता असफल रह जाता हू। मैं आज मानता हू कि उन आंखों की चेतना में, जिसे मैं खुशी की संज्ञा देता या देने को कोशिश करता हूं वे खुशी के नहीं बल्कि कुछ अधिक गहरे रहस्य भरे 'मिस्ट्री' वाले भाव थे जिसे उस पल समझ पाना कठिन था। क्या बाबूजी को मालूम था कि जो कुछ भी मैं कल्पना के जाल सरीखा बुन रहा हू वह यथार्थ से कही कोसों दूर है? मेरी पकड़ से बाहर? शायद हो! तभी उनकी आंखें अधिक रहस्यमय हो उठती थी—मेरी डॉक्टरी और नर्सिंग होम खोलने की बात पर। बड़ा खेल हुआ। बाबूजी के निधन के साथ मेरी सारी कल्पना, सारी इच्छा मर गयी। उस सोलह साल की छोटी उम्र में ही मैं वयस्क हो उठा था। सारा आगा-पीछा सोचना आरभ कर दिया था। सारी ऊंच-नीच मन में बैठ गयी थी, लेकिन इस सब के बावजूद नौकरी से तादात्म्य कर पाना कठिन था। आज अगर किसी को इस तरह को नौकरी मिल जाये तो वह कितना खुश होगा, कैसा भाग्यशाली अपने आप को समझेगा, लेकिन एक मैं था जिसे बैंक की एप्रेंटिशशिप मिली थी और मेरी आखो से आसू ही नही गिर रहे थे, बल्कि मेरा कलेजा भी रो उठा था।

दफ्तर का पहला दिन।

घर छोड़ने, घर से निकलने से पहले अम्मा मुझे बाबूजी के कमरे में ले गयीं। वहां उन्होंने बाबूजी की खड़ाऊ और उनके अस्थिकलश के समक्ष प्रणाम करने को कहा और मैं अपने आप को न रोक सका।

म्मा से लिपट कर रो पडा। मन ने ललकारा—बस इसी बूते पर
ूझने निकलने वाले थे। पर मैं मन की भी मानने को तैयार नहीं
था। मैं तो अपने भाग्य के लिए रो रहा था। वे मारे सपने क्यों बने
थे भाग्य ने और क्यों वह सारा कुछ मुझसे छीन लिया गया था?

अम्मा के गले लगा रो रहा था और वे बडे प्यार से मेरी पीठ
थपथपाते मुझे सात्वना और साहस दे रही थी। कह रही थीं—बेटे,
तूने तो सकल्प लिया था न सेवा का, फिर उसे हर जगह, हर पहलू से
पूरा करना होगा। यह तेरी परीक्षा की ही नही, अध्ययन और शिक्षा
का अवसर है तुझे जीवन से सीखना है। अनुभव लेना है।

मेरी दोनो बहनो और घर के दूसरे लोगो ने गीली आंखो मुझे
विदा किया।

वहा दफ्तर मे पहले ही दिन से जो स्नेह और सम्मान मुझे साथ के सह-
योगियो से मिला, वह सीधे मेरा सम्मान नही था। उसमे कही बाबूजी
का सम्मान और आदर जुडा था। मैं दिवगत प्रधानमत्री का बेटा हूं। वे
जिन्होने देश को एक नयी राह दी है और असमय मे ही कालकवलित
हो गये हैं। उस स्नेह और सम्मान की रक्षा का भार मुझ पर लाद
दिया गया था। मुझे यह एहसास पल-प्रतिपल कराया जाता था—
यानी मेरे अपनेपन की स्वतत्रता मुझे नही रह गयी थी। मैं जैसा चाहूं
वैसा करने को स्वतंत्र नही था और कभी मैंने अपनी स्वतंत्रता के
तहत कुछ किया या करने की कोशिश की तो तुरंत उसका फल भुगतना
पडा है। मुझ पर अनचाहे ही अकुश लगा दिया गया है।

जितने दिन मेरी ट्रेनिग चली, सच बताऊं, उतने दिनो ट्रेनिग क
बल्कि बाबूजी के साथ घटी-घटनाओ, उनके साधारण, सादे जीवन
बारे मे लोग खोज-खोज कर जानने-सुनने की बातें करते। बार-बा
उन घटनाओ को बताने, सुनाने, दोहराने मे मुझे कभी किसी त
का कष्ट नही अनुभव हुआ, बल्कि पुन-पुन. वर्णन करते उन तथ्यो
नये अर्थ खुलने लगे। चूंकि ईश्वर की दी बुद्धि की कुशाग्रता ऐसी
कि बात एक बार ही मन मे उतर आती है, कठस्थ हो जाती है अ
अधिकारियो को ऑफिस के रुटीन कामो के बारे मे एक बार से अ
बताने की आवश्यकता ही कभी नही पड़ी। जिन कामों को जा
समझने में औरो [illegible] ने थे, [illegible] बार घण्

अधिक समय कभी लगा ही नहीं। इसलिए समय की कमी मैंने कभी महसूस ही नहीं की। हां, यह जरूर हुआ कि जल्द काम निबटाने की वजह से मुझे औरों के काम के बोझ को भी वहन करना पड़ा। आदतन वह सब मैंने बिना किसी उज्र के स्वीकार किया।

जल्दी ही यह अनुभव भी घर करने लगा कि यह सारा काम-काजी क्षेत्र बहुत छोटा है, सीमित है। मुझे एक बड़े परिवेश की तलाश करनी होगी। इस बंधी-बधाई जिंदगी से निकलना होगा। मुक्ति पानी होगी।

मुक्ति की तलाश साधारण नहीं होती। जीवन में शॉर्ट-कट नहीं होता। सारी लगन, सारी चेष्टा के बावजूद अगर कोई कमी रास्ते में आती थी तो वह थी उम्र। उम्र ऐसी नहीं थी कि लोग जोखिम का भार मेरे कंधे पर डालते। सभी कहते—अभी बड़ी कच्ची उम्र का है सुनील! और मेरे लिए सभी कुछ पर इतिश्री लग जाती। इस 'दि एंड', इस इतिश्री से छुटकारा पाने की राह बड़ी ही भयावह और दुखदायी रही है।

याद होगा आपको भी वह 19 जुलाई, 1969 का दिन जब प्रधान-मंत्री इन्दिरा गांधी ने देश के बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो जाने की घोषणा की। बैंक जो कल तक कुछ लोगों की सम्पत्ति थे, कुछ लोगों को ही उससे सीधा लाभ होता था, या कि सीधे वे ही लोग उससे लाभ उठा पाते थे जिनके पास बैंक का कंट्रोल था, वह आज खत्म हो गया।

मेरे कार्यालय में एक पत्रकार बंधु आये। उन्होंने जाने कैसे या क्यूं औरों के साथ मुझसे भी बातचीत की और पूछा—बैंकों के राष्ट्रीय-करण पर आपके विचार क्या हैं? आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

मेरा बैंक भी उन बैंकों में से एक था जिनका राष्ट्रीयकरण हुआ था। राष्ट्रीयकरण की सफलता के सम्बन्ध में लोग तरह-तरह की अटकलें लगा रहे थे। उस पल किसे विदित था कि इसका कितना व्यापक असर होगा? फिर भी वह सब उस समय, उस उम्र में न जानते हुए भी मेरे मन में अपने आप एक प्रतिक्रिया उठी, कहा—जो पूंजी अब तक कुछ गिने-चुने हाथों में थी वह अब जन-जन तक लोगों में पहुंच सकेगी। जो सपना हमारे प्रधानमंत्री का है वह अवश्य फली-भूत होगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

सन् 1971 दिसंबर का महीना। कल तक मैं कनाटप्लेस की शाखा में एकाउन्टेंट के पद पर था कि मुझे उत्तर प्रदेश के एक छोटे-से कस्बे काकोरी में ब्रांच मैनेजर बनाकर भेज दिया गया। उस पल अपनी इस नियुक्ति को मैंने उस दृष्टिकोण से नहीं लिया था जैसा वहां पहुंचने के बाद अनुभव हुआ।

समय आपको क्या नहीं सिखा देता। काकोरी, एक कस्बा, एक पिछड़ा हुआ देहाती इलाका। दिल्ली छोड़ने का, सबसे कट जाने की द्विविधा!

निकटता से गांव का परिचय। वह जो एक रोमांटिक लगाव था वह यथार्थ की कड़ी चट्टान पर जब जीने की बारी आयी तब आटे-दाल का भाव मालूम पड़ा। निर्धनता और पिछड़ेपन को किताबों में पढ़कर या सुन-सुनाकर नहीं जिया या समझा जा सकता। सच कहूं, आरम्भ में मुझमें एक पलायन की प्रवृत्ति चिपक गयी थी। फलस्वरूप लखनऊ से 15-16 किलोमीटर की यात्रा हर रोज होने लगी। जरा-सा अवसर आया कि हम लखनऊ में हाजिर हैं।

एक दिन गाड़ी छूट गयी, लखनऊ न जा सका। मन मारकर वापस लौट आया और उदास, समय काटने के लिए घूमता रहा कि यू ही एक पेड़ के नीचे रुका और एक चटखना-सा लगा। लगा जैसे यह पगडंडी, ये खेत, ये जो अपने चारों ओर हैं वे मुझसे बातें करते अपनी ओर खींच रहे हैं। उन सबको, जिसे पराया समझ अलग-थलग जी रहा था, उन सबके साथ अपने को एडजस्ट नहीं कर पा रहा था वे आज एक पल में एक नया अर्थ लिये सामने खड़े हैं।

याद आया, जब बाबूजी की आज्ञा से मैं भोपाल के पिछड़े इलाके में गया था और बाबू जी ताशकंद चले गये थे—उस पल भी तो मैं गांव में था। इससे कहीं ज्यादा, कहीं अधिक पिछड़े इलाके में—उस समय गांव वालों से की बातें, उनसे किये गये वादे—क्या हो गया उन सबका!

सटाक सटाक जैसे कोई बेंत से उधेड़ रहा था। तुम्हें यों ही जबरन [illegible] गया है काकोरी में!

हां कहीं। ये तो वही काकोरी है क्या ?

मन में आग मशीन-सा द्वंद्व चल पड़ा।

मैंने कहा न, हर जीवन के मोड़ का कोई-न-कोई गहन अर्थ होता है और आज अचानक ऊहा-पोह में मन ने एक नया आयाम खोल दिया।

कल तक जिन लोगों को गाव का पिछड़ा मानकर मैं अपने को बचाता, अफसर बना फिर रहा था वह दूरी अपने आप टूट गयी थी। लगने लगा जैसे ये सारे अपने परिचित हैं। जन्म-जन्मांतर के परिचित। एकदम अपने !

यह जो सामने पगडण्डी दिखती है, उसकी धूल जैसे उठाकर सिर-माथे पर लगा लेने की इच्छा जागी। वह जो महिला सिर पर घड़ा रखकर आती दिखी, वह केवल महिला ही नहीं रह गयी थी, वह उस सारे कुछ का एक अभिन्न अंग थी और मैं बजाय घर लौटने के गांव के सरगना कामिल खां से मिलने गया। वे टाउन एरिया के अध्यक्ष थे।

कामिल खां साहब मोहम्मद मन्वीर साहब के पास ले गये। उन दोनों को आश्चर्य था कि मैं वह पुराने पचड़े क्यों उखाड़ रहा हूं जिसके बारे में अब कोई जानना-सुनना नहीं चाहता। वे टाल जाना चाहते थे। लेकिन मेरी उतावली, उत्कंठा से वे पार नहीं पा सके। उस जगह ले गये जहां रेलवे लाइन के पास एक मिट्टी का ढूह खड़ा है। बोले—लो, देख लो, यही है काकोरी की अनोखी विरासत, यहां ट्रेन को लूटा गया सरकारी खजाने का बक्सा रखा गया था, उन सिरफिरे आजादी के दीवानों के द्वारा। लोग इस जगह को भूल न जायें, हमने बरसों पहले इसे मिट्टी के ढूह से ऊंचा कर दिया है। पर जनाब, आप ही पहले स्वतन्त्रता सेनानी के बेटे हैं और इसे खोजते हुए यहां तक आये हैं।

मैं अपनी प्रशस्ति सुनने तो वहां तक नहीं आया था। उन्हें चुप करा दिया और आगे बढ़ उस ढूह पर सिर रख दिया अपना। जैसे वह पल, वह इतिहास मेरा अपना हो उठा था, मैंने वह सब जिया।

एक चुनौती मन में खड़ी हुई ! प्रश्न उठा, तुम इसके लिए क्या कर सकते हो, सुनील ? और जवाब बना : मैं ! मैं क्या कर सकता हूं। यहां रहा तो इसे ईंट का पक्का निशान-सा बनाऊंगा।

कहने का मतलब सिर्फ इतना कि काकोरी जैसे खून में रस-बस गया और समय की मार देखिए, जब राजनीति में आया तो 1983 में प्रधानमन्त्री इन्दिरा जी को वहां ले...

होय हमें का हानी ! और हर दशा में अपनी-सी चलाते जाते हैं, उसमें भी हंसते, मौज से जिंदा हैं। इस सबके चलते मेरी क्या बिसात थी कि मैं रामअवध के काम का बन सकता या उसे अपना बना, उसकी मदद कर सकने का अवसर पा सकना।

उसने अपनी जमीन गिरवी रख छोडी थी। बैल भी गिरवी थे उसके। उसे वहां से उबारना था। बैंक का ऐसा मैंडेट था और मैंने वहां रहकर जो सीखा, जो अनुभव किया सक्रिय राजनीति में आने पर वह सारा कुछ स्कूल में पढे पाठ की तरह काम आया। इसलिए लाख-लाख शुक्र है उस ईश्वर का जिसने जीवन ही नही दिया, अवसर भी। हमारा फर्ज बनता है उस अवसर से लाभ उठाने और विरासत मे पाये दायज को आगे बढाने का।

बाबूजी ने पंडित नेहरू से पायी विरासत को ठोस जमीन प्रदान की उसे आगे बढाया और सौंप गये आने वाले लोगों को, वह सारा कुछ जो एक बुलंदी मे बदल गया।

मेरी यात्रा उसी बुलंदी की खोज है और उसे पाने के लिए मैं बघे-कसे जीवन से बेजार होकर यदि बाहर आया तो वह कोरी प्रक्रिया नही थी, बल्कि मेरे सामने बडो का दिखाया मार्ग है, और अब तक आप परिचित हो चुके हैं कि वह मुझे किस तरह विरासत में मिला है।

काश ! बाबूजी ने ताशकन्द जाने से पहले मुझे अपना निजी काम न सौंपा होता, न कहा होता कि 'आप यदि दस हजार रुपये भी इकट्ठा कर लायेंगे अपनी मध्य प्रदेश, पिछडे इलाकों की, यात्रा के बीच तो हम आपकी काफी तारीफ करेंगे' तो शायद मुझमे उनका वह पानी नही चढा होता ! काश, वह परची जो मैंने उनकी समाधि मे न उठाई होती या उस तरह चुनाव में जाने से पूर्व अम्मा मुझे वहां समाधि-स्थल पर न ले गई होती या कि अम्मा ने यह न कहा होता कि जब भी मैं कठिनाई में होती हू तो तुम्हारे बाबूजी से जवाब पूछती हूं—वह सारा कुछ मेरे शरीर मे, मेरे खून में रस-बस गया है और मेरी यह बलवती इच्छा कि मैं औरो के काम आ सकूं, मुझे मजबूर करती है कि मैं अपनी कमजोरियों को अपने मन की यात्रा को आपके साथ बांटकर जिऊं—आप मेरी इस यात्रा के साक्षी हैं। मेरी शक्ति जनता की शक्ति है और उससे मुह मोड़ना सम्भव नहीं।

फिर आज की आपाधापी मे जब कि मेरे अधिकांश साथियों ने

बर्मा   पटामें मिलन।

वात्सल्य   न लौट आने वाला दिन।

उनकी लगाई बेल
मेरी पत्नी मीरा क

हम तीनों मेरे प्रेरणा-स्रोत और मेरी पूज्य माँ।

वात्सल्य न लौट आने वाला दिन।

उनकी लगाई बेल विभोर, विनय, वैभव और
मेरी पत्नी मंजु का साथ।

हम तीनों — मेरे प्रेरणा स्रोत और मेरी पूज्य मां।

वात्सल्य न लौट आने वाला दिन।

आज हमारे बेटे भी राजनीति में हैं और सुनील जब-तब अपनी दिक्कतों और उलझनों के लिए सलाह-मशवरा करता ही रहता है। हम उसे वही सब बताते हैं जैसे हम शास्त्री जी से बात कहीं करते रहे। उन सब बातों की काफी कुछ झलक आपको सुनील की इस आत्म कथाई। किताब में जहां-तहां संजोयी दिख जायेगी—वह सब हमारे घर का सच है। जिसे शास्त्री जी ने हम सब और देश के साथ जिया-भोगा है उस सबको सुन देखकर आपके मन में जाने कितने सवाल उठेंगे—वह आपके लिए देश, के लिए भय की बात होगी।

हमें खुशी है कि देश आज भी शास्त्री जी का याद करता है। उनका "जय जवान, जय किसान" की जगह मन में है हमारे लिए इतना ही थोड़ा—बहुत कुछ है। कि सुनील ने जिस लगन से लिखकर भान बाबू जी के व्यक्तित्व की गरिमा को जो मानवीय गुणों पर आधारित है, उसे आगे बढ़ाने का प्रयास किया है।

ललिता